तृतीय अध्याय

आलोच्य नाटकों में चरित्र-चित्रण।

आलोच्य नाटकों का चरित्र-चित्रण

कथावस्तु के बाद नाटक में पात्र एवं चरित्र-चित्रण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। नाटककार पात्रों के माध्यम से ही अपने मंतव्य को दर्शक या पाठकों तक पहुँचाता है।

***नायक* -**

नाटक के प्रधान पात्र को नायक कहते हैं। नायक में प्रधानतः दो प्रकार के गुणों की स्थिति मानी गई है - सामान्य गुण और विशिष्ट गुण।

धनंजय ने नेता के सामान्य गुणों का विवरण देते हुए कहा है - "नेता विनीत, मधुर, त्यागी दक्ष, प्रियवंद लोगों को प्रसन्न रखनेवाला बातचीत में कुशल रूढवंश स्थिर, युवा, बुद्धिमान प्रज्ञावान, स्मृति संपन्न उत्साही, कलावान, शास्त्रचक्षु, आत्मसम्मानी शूर, दृढ़ प्रतिज्ञ, तेजस्वी और धार्मिक होता है।"[1] संक्षेप में भारतीय नाट्यशास्त्र नेता को सर्वगुणसंपन्न नेता प्रस्तुत करना चाहता है।

नायक के सामान्य गुणों के साथ कुछ विशिष्ट गुण भी हैं - भरतमुनि ने नायक के चार भेद माने हैं -

धीरोदात्त -

आत्मप्रशंसा न करनेवाला, क्षमाशील, अत्यंत गंभीर हर्ष शोकादि से अप्रभावित रहनेवाला, कार्यों में स्थिर स्वाभिमानी तथा अपनी बात का निर्वाह करनेवाला नायक धीरोदत्त है। इस प्रकार का नायक सभी नायकों में सर्वश्रेष्ठ तथा उदार चरित्रवाला होता है।

धीरललित -

यह नायक निश्चित स्वभाव का कलाप्रेमी, सुखी तथा मृदुल स्वभाव का होता है। इस प्रकार के नायक भोग-विलास तथा सुखद ललित क्रिड़ाओं में सलग्न रहते हैं।

धीरप्रशांत -

धीरप्रशांत नायकों में उपर्युक्त सामान्य गुणों के अतिरिक्त शांत-प्रकृति और प्रसन्न स्वभाव भी होता है। इन नायकों में अंहकार नहीं होता। कृपालु विनशील और नीतिपालक भी होते हैं।

धीरोद्धत -

धीरोद्धत नायक मायावी, अहंकारी, प्रचंड़ आत्मश्लाघी, ईर्ष्यालु, क्रोधी, अत्यंत चंचल प्रकृति का होता है।

इस प्रकार गुण, वय, स्वभाव, कर्म आदि के अनुसार नायक के भेद होते हैं। नाटक की कथावस्तु के साथ इनका प्रत्यक्ष संबंध है।

शृंगार रस की दृष्टि से भी नायक के चार प्रकार होते हैं -

अनुकूल नायक -

सदैव एक ही नायिका में अनुसक्त रहता है।

दक्षिण नायक -

एक से अधिक पत्नीवाला अवश्य होता है किंतु वह प्रधान महिषी का सर्वाधिक ध्यान रखता है। सभी नायिकाओं के प्रति उसका व्यवहार सरल, भद्र तथा सदय होता है। वह एक साथ सबको प्रसन्न रख सकता है।

शठ -

यह अन्य नायिकाओं से प्रेम अवश्य करता है किंतु प्रकट में नहीं।

धृष्ट -

यह स्पष्ट रूप से दुराचरण करता है और निर्लज्ज होता है।

ना.येका -

सर्वगुणसंपन्न नायक की प्रिया या अभीप्सिता नायिका होती है। नाट्यशास्त्र में नायिका की विशेषताएँ इस प्रकार बताई हैं - नायिका रूपवती, गुणशील, यौवन और शक्ति से युक्त, मधुर, प्रसन्न स्नेहपूर्ण स्निग्ध, भावपूर्ण, मधुर वचनी योग्य, क्षोभ रहित, लय, ताल, ज्ञानी, रसयुक्त होती है।''[2] नायिका के रूप गुणों का आकर्षण नायक के लिए महत्त्वपूर्ण है तथा नाटक की कथावस्तु विकास के लिए महत्त्वपूर्ण तथा प्रेरणारूप होता है। आधुनिक नाट्यशास्त्रियों के मतानुसार जो नारी पात्र

मुख्य कथा के विकास में प्रधान योगदान दे वह नायिका होती है।

धनंजय ने कर्म के अनुसार नायिकाओं के तीन भेद किए हैं - "सामान्या, स्वकीया एवं परकीया।"[3]

सामान्या -

इसे गणिका अथवा वेश्या कहते हैं।

स्वकीया -

यह अपने ही पति से प्रेम करती है।

परकीया -

अपने पति को छोड़कर अन्य व्यक्तियों से प्रेम करती है।

नायिका के ये भेद नायक के दृष्टिकोण, व्यवहार अथवा स्थिति पर निर्भर है। साथ ही नायिका की मनोदशा पर आश्रित है। इसी दृष्टि से नायिका की आठ आवस्थाओं की परिकल्पना की गई है। स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, खंड़िता, कलहांतरित विप्रलब्धा, प्रेक्षितप्रिया और अभिसारिका। जाति के आधार पर नायिकाओं के चार प्रकार किए गए हैं - "दिव्या नृपतिनी, कुलस्त्री और गणिका।"[4] भारतीय नाट्यशास्त्र में असंख्य भेद मिलते हैं। इसका स्पष्ट कारण प्राचीन नाट्यशास्त्रियों ने नायिका के भेद निरूपण में अत्यधिक रूचि का निदर्शन किया है। आधुनिक नाट्यशास्त्री नायिका के भेद निरूपण में विश्वास नहीं रखते।

प्रतिनायक -

मुख्य नायक के विरोधी पात्र को प्रतिनायक कहा जाता है जो कि स्वभाव से लोभी, पापी, दुष्कर्मी, व्यसनी, क्रूर और धीरोद्धत होता है। प्रतिनायक की परिकल्पना के पीछे नाटककार का एक मात्र उद्देश्य होता है - असत पर सत की विजय का दिग्दर्शन कराया जाय और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नाटककार प्रतिनायक का ऐसा चरित्रांकन करता है जो कि मुख्य शीर्षक के समक्ष अत्यंत लघु, हीन और नगण्य दिखता है।

अन्यपात्र -

नाट्यशास्त्र में नायक, नायिका प्रतिनायक के अतिरिक्त कई अन्य पात्रों की भी परिकल्पना की गई है। अन्य पात्र कहलानेवाले सारे पात्र नायक अथवा प्रतिनायक को सहयोग देते हैं। इस प्रकार के पात्रों में विट, चेट, शकार, विदूषक, पीठमर्द मुख्य हैं।

i. विट -

भरतमुनि ने विट का लक्षण इस प्रकार दिया है वेश्या के उपचार में कुशल, मधुर, व्यवहारकुशल, कवि, उहापोह की परिस्थिति लाने में समर्थ तथा बात करने में चतुर होता है।

ii. चेट -

चेट का लक्षण कलहप्रिय अनेक कथाएँ जाननेवाला, विकृत रूपवाला, गंध का सेवन करनेवाला मानने और न माननेवाली बातों का विशेष ज्ञान रखनेवाला चेट होता है।

iii. शकार -

श्वेत वस्त्रों और आभूषणों को पहननेवाला, अकारण क्रोध करनेवाला और प्रसन्न होनेवाला,अधम कोटि का, विकारों से युक्त भाषा बोलनेवाला शकार होता है।

iv. विदूषक -

वामन, छोटे कद का बड़े दाँतोवाला कुबड़ा, विकृत मुँहवाला, पीली आँखोंवाला और दोहरी बातें करनेवाला, विदूषक होता है। विदूषक नायक का मनोरंजन भी करता है और सत्परामर्श भी देता है। यह प्रायः पेटू, बहुभोजी चित्रित किया है। प्रेमादि के प्रसंगों में विदूषक मंत्रणा भी देता है और संकेतपूर्ण बातें भी करता है। वह नायक का मित्र माना जाता है। और अंतः पुस्तक उसकी गति होती है। इस प्रकार प्रत्यक्ष हास्योत्पादक विकृतियों से युक्त होने पर भी विदूषक महत्त्वपूर्ण पात्र होता है।

v. पीठमर्द -

पीठमर्द प्रासंगिक वस्तु-पताका का नायक होता है। यह पात्र नायक का घनिष्ठ मित्र और विश्वासपात्र व्यक्ति होता है। गुणों में यह नायक के समीप होता है।

नायक की भाँति नायिका की सहायिकाएँ भी होती हैं, जैसे- सखी, दासी, धाय, शिल्पिनी आदि।

कोणार्क -

चरित्र-चित्रण -

जगदीशचंद्र माथुर के कोणार्क नाटक में कुल पंद्रह पात्र हैं। इनमें से पाँच पात्र ही प्रमुख हैं, शेष गौण हैं। प्रमुख पात्रों में प्रधान शिल्पी विशु, धर्मपद, उत्कल नरेश नरसिंहदेव, उत्कल नरेश का महामात्य राजराज चालुक्य और मंदिर का नाट्याचार्य सौम्यश्रीदत्त पात्र आते हैं। गौण पात्रों में मुख्य पाषाण कोर्तक - राजीव, चालुक्य का दूत - शैवालिक, नरसिंहदेव का रहस्याधिकारी - महेंद्रवर्मन, शिल्पी-भास्कर और गजाधर, प्रतिहारीगण सैनिक और इसके अतिरिक्त एक सूत्रधार और दो वाचिकासहित दस गौण पात्र हैं। नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण इस प्रकार है -

1. विशु -

विशु कोणार्क नाटक का अत्यंत महत्त्वपूर्ण पात्र एवं नायक है। वह उत्कल राज्य का प्रधान शिल्पी है। वह न केवल महान कलाकार है, बल्कि उसका संपूर्ण अस्तित्व ही कलासाधना को समर्पित है। मंदिर निर्माण एवं मूर्तिकला में वह सिद्ध हस्त है। विशु एक भावुक कलाकार, सहनशील व्यक्ति तथा आत्माभिमानी है।

विशु का प्रवेश नाटक के प्रथम अंक के प्रथम प्रवेश में होता है। विशु उत्कल राज्य के प्रधान शिल्पी के पद से विभूषित है किंतु उसका रहन-सहन अत्यंत सादा और शालीनतापूर्ण है। उसे सादा जीवन ही रूचिकर है। महान कलाकार होने के नाते विशु को सभी राजसी सुविधाएँ उपलब्ध हैं तो भी वह सादा जीवन ही पसंद करता है। विशु एक सच्चा कलाकार है। कला के प्रति उसका संपूर्ण समर्पित भाव नाटक में सर्वत्र देखने को मिलता है। कला की सर्वांग सुंदरता को ही वह जीवन की सार्थकता मानता है। कोणार्क मंदिर के कलश के स्थापित न हो पाने से वह काफी चिंतित है। उसकी यह चिंता एक सच्चे कलाकार की चिंता है। वह अपने इस सुंदरतम् निर्माण को अधूरा रहते देखकर व्याकुल हो उठता है और अपने मित्र नाट्याचार्य सौम्यश्रीदत्त से कहता है - ''कह नहीं सकता। पर एक बात अवश्य है, हमने पत्थर में जान डाल दी है। उसे गति दे दी है। वह भूल रहा है कि वह धरती का पदार्थ है।

उसके पैर धरती पर नहीं टिकते। पत्थर का यह मंदिर आज कल्पना के स्पर्श से हवा की तरह गतिमान, किरण की तरह स्पर्शहीन, सुगंध की तरह सर्वव्यापी हो रहा है। लेकिन..... लेकिन धरती उसे जकड़े हुए है, ईर्ष्या से। मुझे लगता है जैसे अनजाने में ही हम लोगों ने पृथ्वी और आकाश के बीच भीषण संघर्ष खड़ा कर दिया है।''[5] अंत में विशु यह भी कहता है कि यदि कोणार्क पूरा नहीं हुआ तो वह उसे नष्ट कर देगा। जब विशु धर्मपद नामक युवा शिल्पी के संबंध में राजीव से जानता है कि वह विद्रोही युवक है तब वह कहता है कलाकार का विद्रोही होना उचित नहीं है। वह कलाकार को कला का एकमात्र उपासक मानता है। विशु अपनी शिल्पकला के प्रति इतना समर्पित है कि वह कला को ही अपना जीवन मानता है। वह कला को श्लिल-अश्लिल घेरे के परे मानता है। उसने मंदिर के स्तंभों, उपपीठ आदि कई भागों पर मनुष्य जीवन की सारी कर्मवासनाएँ, मनोरंजन और मुद्राएँ चित्रित की हैं। सारे जीवन का प्रतिबिंब मंदिर पर अंकित किया गया है। कलश स्थापन के अवसर पर धर्मपद की उचित सलाह के लिए उसे अपना प्रधान शिल्पी का पद सौंपने को तत्पर हो उठता है। उस वक्त विशु धर्मपद से कहता है - ''अगर कोणार्क पूरा हो जाता है तो एक दिन क्या सभी दिनों के लिए वे अधिकार तुम्हारे हो जाएंगे। मैं तुम्हें अपने स्थान पर प्रधान शिल्पी बना दूँगा।''[6]

विशु दंभ एवं प्रदर्शन से सर्वथा दूर है। अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक है। कलाकार के कर्तव्य के सम्मुख सारी सांसारिक सुविधाएं तुच्छ मानता है। उसकी कर्तव्यपरायणता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि वह प्रधान शिल्पी होने के नाते प्राप्य समस्त सुखों और विलासों से दूर रहकर मंदिर के प्रांगण में ही एक कुटिया में निरंतर कार्यरत रहता है।

विशु एक कलाकार है और कला को ही अपने जीवन का सर्वस्व स्वीकारता है। वह चाहता है कि राजनीतिक दांव पेचों में कलाकार को नहीं पड़ना चाहिए। कलाकार को राजनीति से क्या मतलब। माहामात्य चालुक्य के सेवकों ने हजारों मजदूरों की जमीन छीन ली। शिल्पियों को वेतन कम दिया, शिल्पियों पर अनेक अन्याय-अत्याचार किए तो भी वह प्रतिकार नहीं करता, क्योंकि वह कला को त्यागकर दूसरी बातों में समय नष्ट करना अच्छा नहीं समझता। राजनीतिक चर्चा से वह सर्वथा विलग दिखाई देता है। धर्मपद की राजनीतिक बातें उसे अच्छी नहीं लगती; वह धर्मपद से कहता है - ''तुम समझते हो कि हम लोगों को यह सब मालूम नहीं है ? लेकिन राज्य की बातों में पड़ना शिल्पियों के लिए अनुचित है।''[7] वह कहता है शासन के मामले में पड़ना शिल्पियों के लिए अनधिकार की चेष्टा

मानी जाती है।

महाशिल्पी विशु एक श्रेष्ठ कलाकार होने के नाते स्वभावतः गंभीर रहता है। कुछ तो प्रेमजन्य असफलताओं और कुछ अपनी लगनशीलता के कारण वह सदा विरक्त रहता है। जब वह शिल्प संबंधी कठिनाइयों में पड़ जाता है तो निराश नहीं होता, न अपना धैर्य खो बैठता है। वरन उस कठिनाई पर गंभीर चिंतन करता रहता और उस सूत्र की खोज में रहता जिससे कठिनाई हल हो सके। नाटक के प्रारंभ में ही कलश स्थापित न हो सकने की समस्या से हम उसे गंभीरतापूर्वक चिंतन ग्रस्त देखते हैं। कालांतर में धर्मपद के प्रखर व्यक्तित्व से प्रभावित होकर वह गंभीरता पूर्वक विचार करने लगता है कि वह कौन है ? और जब धर्मपद की घायल अवस्था में उसे ज्ञात होता है कि वह उसीका पुत्र है तब तो उसकी गंभीरता चरमसीमा पर जा पहुँचती है।

एक कलाकार का हृदय विशु के पास है। अपने यौवन काल में वह मंदिर निर्माण हेतु शबर देश आया था। वहाँ एक सुंदर शबर कन्या सारिका से उसे प्रेम हो गया। लेकिन बाद में उसे गर्भवती जानकर वह प्रतिष्ठा एवं अपने सम्मान की रक्षा हेतु वहाँ से भाग जाता है। सौम्य श्री के सम्मुख अपनी इस कायरता, असफलता और भूल की चर्चा करता है। वह कहता है "सोम्, भव्य मंदिरों को बनानेवाले मेरे ये हाथ सारिका और उसकी संतान के लिए एक झोपड़ी भी न बना सके।"[8] विशु अपने असफल प्रेम को भुला देने के लिए स्थापत्य कला में अपने को तिरोहित कर देता है। या यह कह दीजिए कि उसकी प्रेम संबंधी भूल उसे महान शिल्पी बनाने में सहायक सिद्ध हुई है।

विशु एक सहनशील कलाकार है, किंतु विश्वासघाती चालुक्य द्वारा जब कोणार्क पर आक्रमण किया गया तब ज्यो संघर्ष छिड़ा उसमें अपने प्राणप्रिय पुत्र की निर्मम हत्या होते देख उसकी प्रतिशोध भावना जागृत हो उठती है। वह स्वनिर्मित सूर्य मंदिर को अपने ही हाथों ध्वस्त कर देता है। और अन्यायियों से अपने पुत्र की हत्या का प्रतिशोध लेता है।

2. धर्मपद -

धर्मपद कोणार्क नाटक का ऐसा पात्र है जो सहनायक के रूप में उपस्थित होता है। अपनी चारित्रिक प्रभावाविष्णुता उद्दाम आवेग एवं विलक्षण कलाधर्मिता के कारण वह प्रायः समस्त नाटकीय पात्रों पर छाया हुआ है। वह एक सोलह वर्ष का कलाकार है। जिसने कला का मर्म उत्तराधिकार

में पाया है। वह महाशिल्पी विशु की अवैद्य संतान है। सोलह वर्ष तक विशु को मालूम नहीं था कि वह (धर्मपद) उसका पुत्र है।

प्रथम अंक में राजीव के साथ वह विशु के सामने उपस्थित होता है। धर्मपद के प्रखर व्यक्तित्व में जन्मजात प्रतिभा के दर्शन होते हैं। उसका कहना है कि उसने किसी गुरू से स्थापत्य कला की दीक्षा नहीं ली। वह उत्कल के महाशिल्पी विशु का प्रतिभासंपन्न पुत्र है।

शृंगार मूर्तियों को देखकर धर्मपद विशु से कहता है - ''जीवन के आदि और उत्कर्ष के बीच एक और सीढ़ी है जीवन का पुरूषार्थ।''[9] इस प्रकार उसके चरित्र में प्रारंभ से ही अदम्य विद्रोह मुखर होता दिखाई देता है। उसने अपनी कलागत विद्रोहता-अश्लील और कामजनक मूर्तियों तथा शिल्पियों के प्रति व्यक्त की है।

एक सच्चा कलाकार होने के नाते धर्मपद मानवतावादी दृष्टिकोण से परिपूर्ण है। चालुक्य द्वारा निर्धन लोगों पर हो रहे अत्याचारों से वह क्षुब्ध हो उठता है। वह महाशिल्पी विशु और अन्यायी चालुक्य दोनों के साथ एक सम्मान स्पष्टवादिता से काम लेता है। वह विशु को आश्वस्त करता है कि वह कलश को स्थापित कर देगा। लेकिन साथ में मंदिर प्रतिष्ठापन के दिन विशु के अधिकारों की माँग करता है।

द्वितीय अंक में धर्मपद का चरित्र प्रभावोत्पादक बन पड़ा है। नरसिंहदेव विशु के कोणार्क मंदिर को देखकर विशु को रत्नमाला पहनने की आज्ञा देते हैं उसी समय धर्मपद का प्रवेश होता है। महाराज नरसिंहदेव के सामने चालुक्य द्वारा शिल्पियों पर किए गए अत्याचार को वह स्पष्ट करता है। धर्मपद कहता है - ''देव झुरमुट की ओट में चहकनेवाले पक्षी का स्वर सर्वथा हर्ष गान ही नहीं होता। आपको क्या मालूम कि उस जयजयकार के पीछे हा-हाकार चुपचाप सिसक रहा था।''[10] इस तरह चालुक्य के अन्याय का खुलकर विरोध करते वक्त वह अपनी गलतियों के संबंध में क्षमा याचना भी करता है।

धर्मपद एक सच्चा कलाकार होने के नाते मानवतावादी दृष्टिकोण से परिपूर्ण है। महामात्य चालुक्य को महामात्य इस पद से हटाने की माँग वह महाराज के सामने करता है। जब चालुक्य विश्वासघात करके महाराज को राजच्युत करना चाहता है तब धर्मपद युद्ध की चुनौती भी स्वीकार करता है। शैवालिक जब उत्तर की माँग करता है तब धर्मपद महाराज से आज्ञा लेकर उसे कहता है - ''तो सुनो

शैवालिक ! अपने नए स्वामी के पास यह अंगारों भरा संदेशा ले जाओ कि कलिंग नरेश श्री नरसिंहदेव महाराज अत्याचारी विश्वासघातियों की धमकियों की चिंता नहीं करते। वे आज अकेले नहीं हैं आज उनके पीछे वह शक्ति है, जिससे धरती थर्रा उठेगी, दीन निर्धन प्रजा की शक्ति जो कोणार्क के शिल्पियों और मजदूरों में दुर्द्दम सेनाओं का बल भर देगी। कोणार्क का मंदिर आज दुर्ग का काम देगा। जाओ, हमें चुनौती स्वीकार है।''[11] धर्मपद चुनौती स्वीकार करने के बाद अपने शिल्पियों को इकठ्ठा करके उन्हें अपने स्थान बना देता है। सभी शिल्पियों को लड़ने के लिए प्रोत्साहित करता है। इस प्रकार कोणार्क मंदिर को एक दुर्ग में बदल दिया जाता है। युद्ध में वह घायल होता है, किंतु शत्रुपक्ष प्राचीर तोड़कर मंदिर के अंदर घुसा चला आ रहा है, यह खबर मिलते ही वह घायल अवस्था में ही अन्यायी प्रतिरोध करने पुनः युद्ध हेतु तत्पर हो उठता है। उसे रोकने की अनेक कोशिशें की गई लेकिन वह किसी की भी सुनता नहीं, इस अत्याचार को अभी ही निपटाने की बात करता है। इस युद्ध को वह धर्मयुद्ध मानता है। जिसमें अपने प्राणों की बली लगाता है। अपने पिता शिल्पी विशु को कलाकार होने की याद दिलाकर स्पष्ट करता है कि सौंदर्य और कारिगर को अत्याचार और मदांधता की मार सहन नहीं करनी चाहिए इसमें ही कारिगर की सबसे बड़ी जीत है।

धर्मपद का चरित्र पूरे नाटक में प्रभावोत्पादक बन पड़ा है। उसका आगमन ही ऐसी संकट की घड़ी में होता है कि कलश स्थापित न होने से सभी शिल्पी चिंतित हैं। वह उसे सहजता से स्थापित करने का आश्वासन देता है और उसकी पूर्ति भी करता है। वार्तालाप के सिलसिले में वह आतंकित तथा चिंताक्रांत लोगों के मन में ऐसा उत्साह तथा साहस भर देता है कि सभी को एक बड़ा सहारा और संकट को पार करा देनेवाला धर्मात्मा महसूस होता है। धीरे-धीरे उसका प्रखर व्यक्तित्व इतना प्रभावी बन जाता है कि समस्त पात्रों का मार्गदर्शक वही बन जाता है। इसके गुणों के कारण विशु उसे 'महाशिल्पी' का पद प्रदान करता है। उसकी वीरता ओजमयी वाणी, अद्‌भुत साहस, संगठन दक्षता को देखकर कोणार्क का दुर्गपति और संपूर्ण राज्य की सेना का प्रमुख वह बनता है।

धर्मपद नाटक का सहनायक है। अपनी चारित्रिक दृढ़ता, प्रखर विद्रोहशीलता, कर्तव्यनिष्ठा, अन्यायविरोधी, सच्चा वीर तथा कलागत संपन्नता के कारण सभी पात्रों को अपने हाथ की कठपुतली बना देता है। अपनी बुद्‌धिमत्ता और अदम्य साहस से सबकी सहानुभूति प्राप्त करता है। इसलिए सभी पात्र उसकी प्रशंसा करने में थकते नहीं हैं।

3. *नरसिंहदेव* -

महाराज नरसिंहदेव उत्कल राज्य के नरेश हैं। नरसिंहदेव प्रजावत्सल और कला के आश्रयदाता, लोकप्रिय, दयालु राजा के रूप में चित्रित हुए हैं।

महाराज नरसिंहदेव द्वितीय अंक में दर्शकों के सामने आते हैं। विशु के कोणार्क मंदिर को देखकर वे खुश हो जाते हैं। वे कहते हैं - ''यहाँ निकट से देखने पर तो प्रतीत होता है, मानो तुमने किसी जौहरी के गढ़े अलंकारों को पाषाण बना दिया हो और दूर से इस विमान और जगमोहन के शिखर हिमाचल की चोटियों की स्पर्धा करते जान पड़ते हैं।''[12] इस प्रकार महाराज कलाप्रिय दिखाई देते हैं जो बंग प्रदेश में अपनी सारी सेना छोड़कर कोणार्क मंदिर को देखने आए हैं। वे विशु पर इतने खुश हो जाते हैं कि उसे रत्नमाला देते हैं। विशु रत्नमाला का स्वीकार नहीं करता तब वे उसे डाँटते हैं।

धर्मपद के द्वारा शिल्पियों पर किए जानेवाले अत्याचार उनकी मुद्राओं का पुरस्कार बंद करना तथा उनकी जमीन छीन लेना आदि बातें महाराज को मालूम होते ही वे इसके अतिरिक्त प्रत्येक शिल्पी को दस-दस सुवर्ण मुद्राओं का पुरस्कार मूर्तिप्रतिष्ठापन के उपलक्ष्य में देने का आश्वासन देते हैं। साथ ही उनकी जमीन तथा मुद्राओं का पुरस्कार भी तुरंत देने की आज्ञा देते हैं।

प्रतिहारी द्वारा चालुक्य के महाषड्यंत्र का पता महाराज को मालूम हो जाता है तो वे निराश हो जाते हैं। इसी समय धर्मपद उन्हें प्रोत्साहित करता है। अंत में रात के समय महाराज जगन्नाथपुरी जाने की योजना बनाते हैं। सभी शिल्पी उन्हें सहयोग देते हैं। और रात के समय महाराज नरसिंहदेव जगन्नाथपुरी चले जाते हैं।

महाराज नरसिंहदेव में नरेशोचित प्रताप, वीरता, उदारता, कलामर्मज्ञता प्रजावत्सलता आदि अनेक महान गुण हैं। लेकिन राजनीतिक दाँव-पेचों में वे एक अदूरदर्शी राजनीतिक ही कहे जाएँगे।

4. *राजराज चालुक्य* -

राजराज चालुक्य उत्कल राज्य का महामात्य है। उसके मन में उत्कल नरेश बनने की इच्छा है। राजराज चालुक्य मंच पर आते ही सभी शिल्पी तथा प्रधान शिल्पी विशु को वह धमकी देता है कि - ''आज से एक सप्ताह के अंदर यदि कोणार्क देवालय पूरा न हुआ तो तुम लोगों के हाथ काट दिए जाएंगे।''[13] महामात्य की यह बात सुनकर सभी शिल्पी भयभीत होते हैं। विशु का राजराज चालुक्य की बात पर विश्वास नहीं बैठता। तब चालुक्य उसे कहता है - ''शिल्पियों के हाथ काट लिए जाएंगे। आज

से आठवें रोज या तो मंदिर में सूर्यदेव की मूर्ति का प्रतिष्ठापन होगा या तुम बारह सौ व्यक्तियों की भुजाओं पर प्रहार।''[14] साथ में चालुक्य यह भी कहता है कि यह उत्कल नरेश की आज्ञा है। इस तरह महामात्य अन्यायी एक अत्याचारी तथा शिल्पियों का शोषण करनेवाला शासक के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होता है।

द्वितीय अंक में राजराज चालुक्य की कूटनीति सफल होती है। मंदिर की ओर आते वक्त रथ की धुरी टूटने का वह बहाना करता है। और पीछे से महाराज तथा कोणार्क मंदिर को घेर लेता है। महाराज को शैवालिक द्वारा चुनौती भी देता है। तब महाराज शिल्पियों का कहना मानकर रात के अंधेरे में जगन्नाथपुरी पहुँच जाते हैं।

तृतीय अंक में चालुक्य महाराज नरसिंहदेव को ढूँढ रहा है। विशु और सौम्य श्रीदत्त को महाराज के बारे में पूछता है, तथा उन्हें धमकाता है कि ''देखता हूँ तुम भी उसी राह पर जाना चाहती हो जिस पर उस उद्दंड़ धर्म को भेजा गया है। उसके शरीर के टुकड़े -टुकड़े करके इसी क्षण समुद्र में फेके जा रहे हैं, जानती हो।''[15] पूरे मंदिर में महाराज कहीं नहीं नजर आते इसलिए चालुक्य क्रोधित होता है। वह शैवालिक को कपाट तोड़ने की आज्ञा देता है। उसी समय विशु चुंबक को तोड़ता है और उसी में शैवालिक के साथ चालुक्य की मृत्यु हो जाती है।

इस प्रकार महामात्य चालुक्य एक आततायी क्रूर, विश्वासघाती, अविनयी रूप में सामने आता है। पूरे नाटक पर भय और अवसाद की जो छाया दिखाई पड़ती है उसका मूल कारण चालुक्य ही है।

5. *सौम्य श्रीदत्त -*

सौम्य श्रीदत्त विशु का मित्र तथा कोणार्क मंदिर का नाट्याचार्य है। सौम्य श्रीदत्त प्रथम अंक में राजीव तथा विशु के साथ चर्चा करता हुआ दर्शकों के सामने आता है। सौम्य श्रीदत्त प्रधान पाषाण कोर्तक राजीव के साथ मूर्तियों के बारे में बातचीत कर रहा है। राजीव मंदिर के उड़ने की बात करता है तब सौम्य श्रीदत्त कहता है - ''मंदिर उड़ेगा नहीं, नाट्याचार्य सौम्य श्री के संकेत पर जब नट मंदिर में देव दासियाँ नृत्य करेंगी तो ताल देने के लिए कोणार्क देवालय ही थिरक उठेगा। ता थेई, ता थेई ता।''[16] सौम्य श्रीदत्त महामात्य के अन्याय तथा अत्याचार की बात भी विशु को कह देता है। वह विशु का सबसे प्रिय मित्र है। वह कुंती और सूर्यदेव के प्रणय प्रसंग पर संगीतक प्रदर्शित करना चाहता है। वह

कुंती और सूर्यदेव का प्रणय प्रसंग विशु को बताता है। तथा विलास के बाद वियोग की स्थिति किस प्रकार होती है यह समझाने के लिए गीतों में गोपियों की विरह वेदना और मुद्राओं में शकुंतला की विवशता आदि बातें बताता है। उसी समय विशु को अपनी प्रेयसी सारिका की याद आती है।

धर्मपद जब मंदिर को पूरा करने की बात कहता है, तब प्रधान शिल्पी विशु के मंदिर निर्माण में किस प्रकार के प्रयास थे यह बताता है। जब चालुक्य शिल्पियों को धमकी देकर चला जाता है तब सौम्य श्रीदत्त बहुत घबराता है। जब धर्मपद महामात्य के अन्याय की बात महाराज के सामने बताता है तब सौम्य श्रीदत्त कहता है - ''महाराज की आज्ञा थी न कि यदि सात दिन के अंदर कोणार्क पूरा न होगा तो सारे शिल्पियों के हाथ काट लिए जाएंगे ?।''[17] जब महामात्य का सामना करने की धर्मपद बात करता है तब सौम्य श्रीदत्त उसे प्रोत्साहित करता है।

विशु के साथ सौम्य श्रीदत्त घायल शिल्पियों पर पट्टियाँ बाँधने का काम करता है। धर्मपद के बारे में उन दोनों में चर्चा हो रही है। उसके गले का कंठहार सौम्य श्रीदत्त के हाथ में देखकर विशु विह्वल हो उठता है। अंत में सौम्य श्रीदत्त ही बताता है कि विशु तुम्हारा पिता है।

सौम्य श्रीदत्त विशुद्ध रूप से कला को समर्पित सरल हृदय, लोकोपकारी सहायक, सहृदय और ममत्वपूर्ण मित्रभाव रखनेवाला व्यक्ति है। विशु की तरह उसके हृदय के भावावेग भावावेश नहीं बन जाते। कल्पना की रंगीन दुनिया में रहकर भी जो जीवन के कठोर यथार्थ से परिचित नहीं।

6. राजीव -

राजीव मुख्य पाषाण कोर्तक है। वह एक उपकरण पात्र है। उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है- मंदिर के ध्वस्त होने की संभावना से संबंद्ध नाटकीय विड़ंबना को उपस्थित करना। वह यह सूचना देता है कि नगर के ज्योतिषी ने गणना की है कि जैसे-जैसे ही मंदिर निर्माण का कार्य पूरा होगा, मंदिर के पत्थरों को पंख लग जाएंगे। और अंत में ऐसा ही होता है, पत्थर उड़ने लगते हैं और मंदिर ध्वस्त हो जाता है।

इस तरह राजीव इस पात्र में कोई चरित्र विकसित नहीं हो पाता। वह एक पात्र के रूप में प्रयुक्त है।

7. *शैवालिक* -

शैवालिक चालुक्य का दूत है। वह महाराज को राजराज चालुक्य ने दिया हुआ संदेश देता है। साथ में यह भी बताता है कि तोषालि और कणिका सामंत भी चालुक्य की बाजू में हैं। अंत में वह चुनौती देकर चला जाता है। चालुक्य के साथ वह आता है और पत्थरों की चोट से मर जाता है।

8. *महेंद्रवर्मन* -

महेंद्रवर्मन नरसिंहदेव का रहस्याधिकारी है। वह हर समय महाराज नरसिंहदेव के साथ रहता है। कोणार्क मंदिर तथा अपना राज्य और राजा के प्रति उसके मन में प्यार तथा कर्तव्य की भावना होती है। अंत में महाराज के साथ वह रात के अंधेरे में जगन्नाथपुरी चला जाता है।

यह पात्र पूरे नाटक में अपना कोई अलग स्थान तथा महत्त्व नहीं रखता।

9. *अन्य पात्र* -

अन्य पात्रों में भास्कर, गजाधर, प्रतिहारीगण तथा सैनिक आदि पात्र नाटक में प्रयुक्त हुए हैं। इन पात्रों का अपना अलग अस्तित्व नहीं है। इन पात्रों की कोई चारित्रिक विशेषताएँ भी नहीं हैं। पर इनका होना नाटक के लिए जरूरी है।

निष्कर्ष -

इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि विशु, धर्मपद, सौम्य श्रीदत्त, नरसिंहदेव और राजराज चालुक्य कुल पाँच पात्र ही ऐसे हैं जिनमें चरित्र और व्यक्तित्व डाला गया है। शेष सात पुरूष पात्र आद्यंत पात्र ही बने रह जाते हैं। क्योंकि उनके भीतर कोई चारित्रिक गुणधर्म डालने का प्रयास नाटककार ने नहीं किया, ये सारे नितांत गौण पात्र हैं।

उपर्युक्त पात्रों में से अधिकांश पात्र गतिशील ही हैं। मुख्य रूप से धर्मपद और राजराज चालुक्य दो ही ऐसे पात्र हैं जो स्वभावत: स्थिर चरित्रों की श्रेणी में परिगणित किए जा सकते हैं। विशु का अंतर्दवंद्व उसकी चारित्रिक गतिशीलता में अद्भुत रूप से सहायक हुआ है। महाराज नरसिंहदेव यद्यपि प्रारंभ में स्थिर चरित्र है किंतु अंतत: वह भी गतिशील हो उठते हैं। धर्मपद स्थिर चरित्र होते हुए भी प्राय: सभी चरित्रों को गतिशील चरित्र बना देता है।

अपने प्रभावविष्णु व्यक्तित्व से वह न केवल विशु के कलाकार हृदय को आंदोलित एवं उसे प्रतिशोध लेने को कटिबद्ध करता है। साथ में वह महाराज नरसिंहदेव, राजीव और नाट्याचार्य सौम्य श्रीदत्त को भाव विह्वल करके उनका हृदय जीत लेता है। धर्मपद स्थिर चरित्र होते हुए भी एक महान चरित्र है।

राजराज चालुक्य आरंभ से अंत तक स्थिर चरित्र दिखाई देता है, लेकिन वह भी अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ने में नहीं चूकता। उसका क्रूर स्वभाव उसके व्यक्तित्व में एक निखार लाता है। अन्य पात्र प्रायः वर्गगत हैं।

संक्षेप में हम यह कहेंगे कि नाटक के सभी पात्र चाहे स्थिर हो या गतिशील। अपनी विशिष्टताओं के साथ ही अपने व्यक्तित्व और भावनाओं को अधिक प्रकाश में लाए हैं। अपने इसी गुण के कारण ये पात्र सजीव, आकर्षक, विशिष्ट और प्राणवान् हैं।

'पहला राजा' नाटक में चरित्र-चित्रण -

जगदीशचंद्र माथुर के 'पहला राजा' नाटक के पात्र अपनी वैयक्तिक विशिष्टताओं की रक्षा करते हुए प्रतीकात्मक संकेत भी करते हैं। प्रस्तुत नाटक में पृथु प्रधान पात्र है, कवष के सिवा गर्ग, अत्रि और शुक्राचार्य ये तीन मुनि तथा सूत और मागध ये स्तुतिपाठक हैं। ये सभी पुरूष पात्र हैं। स्त्री पात्रों में सुनीथा के सिवा अर्चना और उर्वी प्रधान स्त्री पात्र हैं। इसमें दासी भी दो अंको में प्रविष्ट होती है। कथानक की दृष्टि से सूत्रधार और नटी भी महत्त्वपूर्ण पात्र हैं। इसके सिवा कुछ मुखिए ग्रामीण जन आदि सामान्य पात्र रंगमंच पर प्रवेश करते हैं।

1. पृथु -

पृथु 'पहला राजा' नाटक का नायक है। वह वेन का भुजापुत्र है। वह हिमालय से गुरू अंग के कहने पर ब्रह्मावर्त आ चुका है। दस्युओं के निष्कासन का कार्य उस पर सौंपा गया है। परंतु ब्रह्मावर्त की परिस्थितियों को देखकर वह यही ठहरने का निश्चय करता है। उसे उर्वी का प्यार भी वापस नहीं खींच सकता।

मुनियों के आग्रह से पृथु राजा बनता है। मंथन प्रसंग के समय उसे मुखौटा पहनकर वेन की दाहिनी भुजा से उत्पन्न पुत्र घोषित किया जाता है। फिर उसे शपथ दिलवाकर पाँच वचन लिए जाते हैं

1. "वेदपाठी ब्राह्मण अदंड़नीय होंगे।"[18] तथा 2. "समाज को वर्ण संकरता से बचाएंगे, आर्य, अनार्य जाति के रक्त में मिलावट नहीं होने देंगे।"[19]

इन दो वचनों पर वह रूकता है। इससे स्पष्ट है कि पृथु पक्षपाती नहीं है। वह समानता चाहता है।

नाटक की महत्त्वपूर्ण घटना दस्युओं का निष्कासन है। इस समय पृथु की स्तुति की जाती है। लेकिन यह स्तुति पृथु को पसंद नहीं है। वह शुक्राचार्य का 'आजगव' धनुष्य लेकर तैयार होता है। अपने काम में वह कवष का साथ चाहता है। लेकिन कवष उस पर नाराज होकर चला जाता है। इसी समय अर्चना उसका साथ देती है और पृथु उसके प्रेम में डूब जाता है।

पृथु जब दस्युओं का निष्कासन करके लौटता है तो सूत-माथध उसकी स्तुति करने लगते हैं, तब पृथु अश्विनीकुमार, वरूण, अग्नि, इंद्र आदि की स्तुति चाहता है। इससे पृथु का विनयभाव सामने आता है।

अर्चना पृथु की पत्नी बन चुकी है। उसके मादक सम्मोहन से वह हर्षविभोर हो उठता है। उसे उर्वी की याद तक अच्छी नहीं लगती वह दस्यु कन्या है और राजा पृथु ने रक्त मिलावट न करने की सौंगध ले ली है। उसे पत्नी, धर्म और गृहस्थी जीवन अधिक प्यारा है। पृथु हर समय राजधर्म और क्षात्रधर्म निभाना चाहता है। राजधर्म को तुरंत चुनौती मिल जाती है। दासी आकर जनता के उपद्रव की बात बताती है। तो पृथु तेजी से उसके दमन के लिए प्रस्थान करता है तथा निहत्था भीड़ में घुस जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि पृथु साहसी तो है ही साथ ही अपनी जनता पर उसका विश्वास है। इसलिए तो उस विषय में वह जनता का साथ देना चाहता है। जो मुनियों को पसंद नहीं है। उनके साथ मिलकर भूचंड़िका की पूजा का विरोध जरूर करता है। वह कहता है - "धरती को मेरे धनुष्य की टंकार सुननी होगी मैं उसके उन्माद को चूर-चूर कर दूँगा।"[20] "मैं भूचंड़िका का वध करूँगा।"[21] यहाँ पृथु के सामने एक और समस्या आ जाती है। भूचंड़िका का उपासक उसके 'मन का मीत' निषाद कवष ही है। परंतु पृथु कर्तव्य पालन को अधिक महत्त्व देता है।

पृथु अपना विलक्षण स्वप्न अर्चना को बताता है। यह उसके भूचंड़िका के वध का नाट्यमय रूप है। स्वप्न में धरती की असलियत का पता उसे नहीं लगता। पृथु का चरित्र तब परिवर्तित होता है जब उसे स्वप्न की वास्तविकता का पता चलता है। उर्वी देखकर वह आश्चर्यचकित हो जाता है।

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

उर्वी उसे धरती का महत्त्व समझा देती है। "तुमने और तुम्हारी प्रजा ने जमीन को समतल बनाकर उपजाऊ करने की तो कोशिश ही नहीं की।"[22] पृथु कृषक और श्रमिक का महत्त्व समझ जाता है। वह धरती को दोहन के लिए कवष के साथ सिद्ध होता है।

इस प्रकार पृथु दो बरस में ब्रह्मावर्त की भूमि की कायापालट करता है। जमीन को समतल बनाता है। पशु शालाएँ खोलता है। सोने की खाणों का पता लगवा देता है। इसी को स्थाई रूप देने के लिए नहर का प्रस्ताव रखा जाता है। लेकिन यहाँ भी पृथु के सामने एक समस्या आ जाती है। नहर का काम ठीक न हो, पूरा न हो, इसलिए मुनि साजिश करते हैं। बाँध का काम अपूर्ण रह जाता है। आश्रमवाले अनाज को हड़प जाते हैं। शुक्राचार्य को आश्रम का ठेका मिला पर उन्होंने अपना काम ठीक से नहीं किया। नहर को पूरा करने के लिए तीन सौ मजदूरों की जरूरत होती है। मगर मजदूर नहीं मिलते। जब सत्य का पता पृथु को लग जाता है तब पृथु स्वयं हाथ में कुदाल लेता है लेकिन पृथु के बाँध पर पहुँचने से पहले ही बाँध टूट जाता है। उसमें उर्वी और कवष बह जाते हैं।

इस प्रकार पृथु एक राजा नहीं हाथ में कुदाल लेकर काम करनेवाला श्रमिक बन जाता है। पृथु के चरित्र का यह अंतिम हिस्सा राजा के वास्तव रूप का पता बताता है।

2. ***कवष*** -

साँवला-सा शरीर आदिम जाति का सा चेहरा लेकिन कुरूप नहीं वरन् तेजस्वी मुख-मुद्रा यह है कवष का रूप। कवष वेन की निषाद पत्नी से उत्पन्न संतान है। अंग की आज्ञानुसार वह वेन की माता सुनीथा से मिलने ब्रह्मावर्त आया है। मिलने के बाद वह वापस जाना चाहता है। उसे ब्रह्मावर्त में पृथु का रहना भी पसंद नहीं इसलिए वह कहता है - "तब उसका कहना ठीक था। .... उर्वी ने कहा था कि पृथु मुझसे दूर भागना चाहते हैं।"[23] "पृथु आओ हम लोग लौट चले।"[24] लेकिन पृथु उसे अपने साथ रख लेते हैं।

कवष पृथु तथा मुनियों को सावधान करता है। डाकुओं ने गाँवों पर ज्यो आक्रमण किया है यह समाचार कवष ही बताता है। पृथु कवष को अपना सेनापति बनाना चाहता है। लेकिन कवष तैयार नहीं होता। वह कहता है - "पृथु तुम्हारे मंत्रिमंड़ल के मुनियों ने तो मुझे जंघापुत्र घोषित किया है। मुझे तो जंगल की जातियों का सरदार बनना है, तुम्हारा सेनापति नहीं।"[25] कवष को आर्य, अनार्य, निषाद

यह भेदभाव पसंद नहीं लेकिन मजबूर होकर पृथु का साथ देता है। वह आश्रम की रक्षा के लिए तैयार हो जाता है। कवष को पृथु के उर्वी संबंधी विचार मान्य नहीं हैं। वह पृथु से नाराज है।

जब कवष भूचंड़िका के अनुष्ठान के लिए बैठता है तब मुनि उसे आश्रम से निकाल देते हैं। क्योंकि मुनियों का कहना है कि उसने सरस्वती जल को अपावन कर दिया है। निषाद हमारे साथ बैठकर यज्ञ करना चाहता था। गर्ग का यह वाक्य पृथु को अच्छा नहीं लगता। कवष का अनुष्ठान बंद करने के लिए पृथु उसके पास चला जाता है।

पृथु कवष को मिलता है। सरस्वती की सूखी धारा में एक यंत्र द्वारा नहर खोदकर जल निकालने की योजना का पता पृथु को मिलता है और दोनों एक हो जाते हैं। दोनों मिलकर दोहन प्रकारों का वर्णन करते हैं। अंत में नहर-खुदाई और बाँध के बांधने में कवष आत्मबलिदान करता है। बाँध टूट जाता है, नहर सूख जाती है। कवष के साथ उसका सपना भी पानी के साथ बह जाता है। कगार पर खड़ी उर्वी जब पानी में डूबने लगती है तब कवष उसे बचाने की कोशिश करता है, उस वक्त दूसरा कगार कवष के उपर गिरता है। दोनों पानी के साथ बहकर जाते हैं। इस प्रकार कवष का अंत हो जाता है।

कवष के चरित्र की इन घटनाओं से पता चलता है कि, अपने को हीन मानने पर उसे दुःख नहीं। उसे अपने पराक्रम का गर्व है। आदि से अंत तक उसके चरित्र में पराक्रम ओतप्रोत भरा है। वह आदि से अंत तक उर्वी का साथ देता है। वह श्रम का महत्त्व जानता है। केवल बात करना उसे पसंद नहीं है। वह कहता है - "मुझसे पूछो तो ब्रह्मावर्त में लोग बातें ज्यादा करते हैं, काम कम...।"[26]

3. *मुनित्रय -*

अत्रि, गर्ग और शुक्राचार्य ये तीन मुनि इस नाटक में हैं। ये बहुत ही स्वार्थी तथा कूटनीतिज्ञ हैं। अपने स्वार्थ के लिए वे जनता के साथ तथा आपस में भी झगड़ते हैं। अपनी ब्राह्मण जाति को सर्वश्रेष्ठ समझकर उस पर गर्व करते हैं। अपनी जाति के विरूद्ध होनेवाले वेन की वे हत्या करते हैं। मगर वे उसे हत्या नहीं मानते।

शुक्राचार्य शुक्रनीति में माहिर है। वे दूसरों की बातें छिपकर सुनते हैं और उसका स्वीकार भी करते हैं। अत्रि कहते हैं - छिपकर सुनना भृगुवंशियों की पुरानी आदत है। अत्रि भाषण करने में मशहूर है। वे अपने प्रभावशाली भाषणों द्वारा जनता को आकृष्ट करते हैं। सूत और मागध उनके गुप्तचर हैं। जब दस्युओं का उन पर आक्रमण होने लगा तब अपने रक्षण की वे चिंता करने लगे। उन्हें

अपनी रक्षा के लिए राजा की आवश्यकता पड़ी और ये तीनों मुनिगम राजा बनाने की यंत्रणा तैयार करते हैं। उसके लिए वेन के शरीर का मंथन किया जाता है। इस कार्य के लिए वे सुनीथा को भी राजी करते हैं। पहले से वे राजा को अपने हाथ की कठपुतली बनाकर रखना चाहते हैं और उसके लिए विभिन्न प्रकार की शर्तें पृथु के सामने रखते हैं।

पृथु राजा बनता है। वचन का स्मारोह शपथविधि के रूप में संपन्न होता है। इस समय मुनियों की स्वार्थी दृष्टि सामने आ जाती है। वेदपाठी ब्राह्मणों को दंड न देने तथा आर्य के रक्त में मिलावट न होने देने पर उनका जोर है। पृथु अपना पराक्रम दिखाकर दस्युओं के आक्रमण से मुनियों को संरक्षण देता है। शुक्राचार्य को मंत्रिपद देने पर अत्रि को दु:ख है। तीनों आपस में झगड़ते हैं। वे पृथु को 'आजगाव' नामक धनुष्य देते हैं। लेकिन पृथु के निहत्थे भीड़ में जाने पर वे परेशानी में डूबते हैं। शुक्राचार्य कहते हैं - ''नहीं गर्ग ! नहीं ! राजा की हत्या की मुझे इतनी चिंता नहीं जितनी उसके बच जाने की।''[27]

मुनियों को दस्युओं के तथा अनार्यों के प्रति अत्यंत चिढ़ है। वे इस परेशानी में हैं कि कवष और उर्वी ने भूचंड़िका का जो अनुष्ठान शुरू किया है वह किस तरह पृथु बंद करें। वे इस समय कवष को आश्रम से बाहर निकालते हैं। तथा कवष और पृथु के बीच युद्ध करवाना चाहते हैं। उनका स्वार्थ इतना बढ़ जाता है कि तीनों के आश्रम अलग-अलग होते हैं। बाँध तथा नहर का काम पूरा न हो जाय इसलिए वे काम पर आदमी नहीं भेजते। क्योंकि उनका कहना है कि इस नहर तथा बाँध का फायदा हमें मिलनेवाला नहीं। इसका फायदा किसान निषाद और दस्युओं को ही है।

अंत में मुनियों की कूटनीति सफल होती है। बाँध टूट जाता है। उसमें कवष और उर्वी बह जाते हैं। इस प्रकार ये तपस्वी मुनि अत्यंत स्वार्थी हैं, स्वार्थ के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार हो जाते हैं।

4. सूत और मागध -

सूत और मागध पृथु के सफल चाटुकार एवं स्तुतिपाठक हैं। प्रारंभ में ये दोनों मुनियों के गुप्तचर के रूप में सामने आ जाते हैं। दासी द्वारा कुशा की रस्सी को रोपने की खबर वे ले आते हैं। उसी प्रकार पृथु के आगमन का भी समाचार वे ले आते हैं। जब पृथु राजा बनता है तब वे उसकी स्तुति

करते हैं। पृथु पहले उनकी स्तुति सुनता है, मगर बाद में टोकता है। उसके बाद राजा उन्हें पूरबी सीमा पर अनुप नाम के प्रदेश में अधिपति नियुक्त करता है। तब वे बहुत खुश हो जाते हैं।

दोनों राजा की स्तुति करने के लिए उसके सामने हाजिर होते हैं। किंतु पहले राजा की अनुमति माँगते हैं। तब पृथु उन्हें देवी तथा इंद्रादि देवताओं की स्तुति करने के लिए कहता है। महारानी की आज्ञा से वह पृथु के पराक्रम की कथा सुनाने के लिए राज्य में चारों ओर चले जाते हैं।

अंत में वे पृथु के सामने हाजिर होते हैं और बाँध टूट जाने का समाचार बताते हैं। साथ ही कवष और उर्वी के बह जाने का समाचार भी वे बताते हैं।

सूत और मागध के व्यक्तित्व से यह मालूम होता है कि वे अपने कार्य में तत्पर और स्वार्थी है। लेकिन मुनियों की तरह उनका स्वार्थ नहीं है।

5. *अर्चना -*

अर्चना गर्ग मुनि की कन्या के रूप में सामने आ जाती है। लेकिन शुक्राचार्य द्वारा इस बात का पता चलता है कि अर्चना गर्ग की दत्तक कन्या है। उसके माता-पिता का पता नहीं है। वह गर्ग मुनि की पालित कन्या है।

पृथु राजा बनते ही अर्चना की शादी तय होती है। अर्चना को देखते ही पृथु के मन में मादक फूल मुस्करा उठते हैं। पृथु उसे 'हठीली कली' कहकर पुकारता है। पत्नी होने के नाते अर्चना उसका बहुत खयाल करती है। हर पल में वह उसका साथ देना चाहती है। वह कहती है - ''मैं आपकी अर्धांगिनी हूँ। जो बयार आपको छुएगी क्या वह मुझे नहीं झकझोरेगी।''[28]

अर्चना पृथु के साथ पूरी तरह घुल-मिल गई है। वह प्यार में कहती है - प्रेयसी के आगे गृहिणी का बंधन बांसी लगता है। तभी पृथु उसे गृहस्थ जीवन की श्रेष्ठता बताता है। अर्चना इसके अलावा राजनीति में भी पृथु का साथ देती है। जब जनता के उपद्रव का शमन करने के लिए पृथु चले जाते हैं तब वही बातचीत की बागड़ौर संभालती है। दासी से अकाल की सूचना मिलने पर वह मुनियों के साथ अकाल के बारे में बातचीत करती है।

पृथु अपना सपना अर्चना को सुनाता है। अब वह पूर्णत: राजनीति में उतर गई है। वह हर समय गर्ग और अत्रि का पक्ष लेती है। लेकिन पृथु उसकी नहीं मानता। तब वह निराश होकर कहती है - ''पिताजी मैं इस विवाद में नहीं पड़ सकती।''[29]

इस प्रकार अर्चना पृथु की पत्नी बनकर रहती है। उसे भरपूर प्रेम देती है। अपना पत्नी धर्म निभाती है।

6. *उर्वी -*

उर्वी एक अनार्य कन्या है। जितना कवष उस पर प्रेम करता है, उतना ही पृथु करता था। वह भी दोनों को चाहती है। उर्वी की कवष और पृथु दोनों को चाहने की बात अर्चना के समझ में नहीं आती। उर्वी- ''नेह भी एक खोज है। मेरे मन का मेघ दो तालों के दर्पणों में झाँकता है।''[30] वह पृथु और कवष दानों को वापस लेना चाहती है। वह बाहर से भले ही खुरदरी हो लेकिन उसका ह्रदय कोमल है।

उर्वी ने आर्यावर्त की कठिणाइयों को जान लिया है। त्रिगर्त की उस मनोरम प्रदेश की जहाँ 'विपाशा' की धारा में बर्फीली चोटियों का संगीत उमड़ता है।

उसके मतानुसार ब्रह्मावर्त में उलझने-ही-उलझने बिछी पड़ी हैं। मरे हुए राजा का शरीर, डाकू और लुटेरों की आँधियाँ और तरह-तरह के दाँव-पेच। इससे स्पष्ट है कि ब्रह्मावर्त की असलियत उसने जान ली है।

उर्वी धरती का रूप है। प्रारंभ में जो बात वह कहती है सच निकलती है। उर्वी उन्मुक्त प्रेमिका है। 'कभी गीत कभी उन्माद' परंतु ऐसी उर्वी को दस्यु कन्या, डाकुओं की कन्या माना जाता है। लेकिन वह तो डाकुओं के विनाश के लिए खड़ी है। पृथु और अर्चना में उर्वी को लेकर छेड़-छाड़ होती है। तब तक पृथु उसे भुल चुका है। वह कहता है - ''उस दस्यु कन्या के याद के कोयले भी ठंड़े हो चुके हैं।''[31] इससे स्पष्ट है कि पृथु ने उसे हीन जाति की माना और उसे भुला भी दिया।

जब पृथु भूचंडिका की पूजा नष्ट करने के लिए पहुँच जाता है। तब वह देखता है कि जिस स्त्री पर देवी चढ़ी है वह उर्वी ही है। उर्वी पृथु को धरती का महत्त्व समझाती है। अंत में राजा पृथु उर्वी की बात मानता है।

अंत में उर्वी कवष के लिए आत्मबलिदान देती है। उर्वी का चरित्र निश्चित ही त्यागमय और उदात्त है वह कर्म का संदेश लेकर आती है, वह धरती की आत्मा है।

7. *सुनीथा -*

सुनीथा का चरित्र केवल पहले अंक में ही उभरता है। वह दीपक के प्रकाश में सामने आती है। उसने अपने विलक्षण लेपन द्वारा अपने पुत्र वेन को अठ्ठाईस दिन ज्यों का त्यों रखा है। उसे विश्वास है उसके पुत्र के प्राण वापस आएंगे। वह मुनियों का स्वार्थ और उसकी चालबाजी समझती है। परंतु अंत में मुनियों ने वेन के देहमंथन का प्रस्ताव उसके सामने रखा था, उसके लिए वह राजी होती है। अपने पुत्र वेन के हजारों अपराध वह हजम करती है। क्योंकि अंग के बाद उसके जीवन का एक मात्र सहारा उसका बेटा वेन ही है।

मंथन में पहले निषाद का जन्म होता है। वह बहुत घबराती है। वह कहती है - "मुझे यही डर था कि वेन की कालिमाही प्रकट होगी।" लेकिन जब पृथु का जन्म होता है तब वह खुश होती है। पृथु राजा बनने के बाद सुनीथा को माता समझकर प्रणाम करता है। फिर वह घायलों की सेवा करने के लिए चली जाती है। इससे उसका सेवाभावी चरित्र सामने आता है।

सुनीथा पुत्र-प्रेमी, कर्मप्रवण सेवाभावी माँ के रूप में हमारे सामने आती है।

निष्कर्ष -

उपर्युक्त पात्रों के चरित्र-चित्रण से स्पष्ट है कि प्रस्तुत नाटक के पात्र पौराणिक वातावरण में पलकर सामयिक अर्थ व्यक्त करनेवाले प्रतीक चरित्र हैं। पृथु, कवष नायक के रूप में तथा मुनित्रय खलनायक के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। अर्चना और उर्वी नायिकाएं हैं। सूत और मागध तथा सुनीथा गौण पात्र हैं।

प्रस्तुत नाटक में प्रत्येक पात्र अपना जीवन स्वयं जीता है। जिसके कारण अन्य पात्र का चरित्र भी निखरता है। प्रत्येक पात्र की अपनी-अपनी अलग चारित्रिक विशेषताएँ हैं। इस तरह प्रत्येक पात्र का चरित्र अपने आप में सुंदर बन पड़ा है।

'शारदीया' नाटक में चरित्र-चित्रण -

'शारदीया' नाटक में कुल मिलाकर तेरह पात्र हैं। इनमें से चार प्रमुख पात्र हैं, बाकी गौण पात्र हैं।

प्रमुख पात्रों में नरसिंहराव जो नाटक का नायक तथा बायजाबाई का प्रेमी है। शर्जेराव उर्फ सखाराम घाटगे कागल गाँव का किलेदार। बाद में नाना फड़णवीस और दौलतराव सिंधिया का

कर्मचारी। दौलतराव सिंधिया ग्वालियर राज्य का नरेश। बायजाबाई शर्जेराव घाटगे की पुत्री एवं नरसिंहराव की प्रेमिका है।

गौण पात्रों में परशुराम भाऊ बाबा फडके, जिन्सेवाले, सरनाबाई, रहीमन, गढ़पति, दरबान, पत्र लेखक, सैनिक आदि पात्र आते हैं।

1. नरसिंहराव -

नरसिंहराव 'शारदीया' नाटक का प्रधान पात्र एवं नायक है। बायजाबाई की माँ को दिए हुए वचन की पूर्ति करके वह उससे मिलने आया है। जब बायजाबाई उसे कागल छोड़ने का कारण पूछती है तब नरसिंहराव कहता है - ''बायजाबाई आज अगर तुम्हारी माँ होती तो उनसे इस प्रश्न का उत्तर दिलवाता।''[32]

नरसिंह बायजाबाई को उसकी माँ के साथ किया हुआ वायदा बताता है और उसकी पूर्ति के लिए वह सौदागर और कारिगर भी बना यह बताते हुए वह गठड़ी में से एक बारीक साड़ी उसे दिखाता है जिसका वजन पाँच तोला है और उसे 'पंचतोलिया' कहा जाता है। यहाँ नरसिंहराव एक प्रेमी ज्यो अपने प्यार को पाने के लिए बड़ी-से-बड़ी कठिनाइयाँ उठानेवाला चित्रित किया है।

नरसिंहराव बायजाबाई से विदा लेकर सिंधिया महाराज के दल में सामील होने की बात कहता है, तब बायजाबाई दो बरस पहले शरद-पूर्णिमा के दिन उनकी भेंट और जुदाई के बारे में कहती है। उसी समय नरसिंहराव उसे कहता है - ''चाहे मैं तुम्हारे निकट होता हूँ चाहे तुमसे दूर, शरद् की पूर्णिमा की तरह तुम मेरे मानस में छाई रहती हो। निर्मल, शीतल मन के कोने-कोने को भासमान करती रहती हो। गहरे अंधकार में मैंने मुसकाती चाँदनी का अनुभव किया है। बायजाबाई तुम ही तो मेरी चाँदनी हो, मेरी शारदीया।''[33] बायजाबाई नरसिंह को अपने रक्त का टीका लगाकर एक वीर पत्नी की तरह विदा करती है।

मराठों के शिबिर के तंबू में मराठा सरदारों में निजाम पर आक्रमण करने के बारे में चर्चा हो रही है, उसी समय नरसिंह का प्रवेश होता है और सभी को यह बात बता देता है कि आज रात में निजाम के जश्न में मराठा सरदारों की नकल उतारी जाएगी और हमारे लिए यह सुनहरा मौका है। नरसिंह स्वयं रणनीति तय करता है। उसके मतानुसार सभी सिपाहियों की जगह निश्चित की जाती है। यहाँ नरसिंह का रणनीति तथा देश प्रेम उजागर होता है।

नरसिंह अगली रात को ही नाटक के लोगों के साथ मिलकर जाने की बात करता है। तब भाऊ उसे पुल काट देने की बात फिर से कह देते हैं। तब नरसिंह कहता है - "कोशिश करूँगा।.... सेनापति पंथ के आशीर्वाद से यह अनुष्ठान पूरा करूँगा।"[34] इस प्रकार हमला करने से पूर्व ही मराठा सरदारों में नरसिंह सारी बातें खुलकर कहता है। यहाँ नरसिंह की स्पष्टवादिता दिखाई देती है। सिंधिया महाराज के सामने नरसिंह की एक और बात खुलकर कहता है। वह कहता है कि इस युद्ध में जीत हमारी होगी। विजय के बाद जब निजाम को उद्दंड़ता और चौथ का निबटारा करने के लिए आप बैठ जाएंगे तो स्पष्ट शब्दों में आपको दो घोषणाएं करनी होंगी - "पहली घोषणा तो यह कि दोनों राज्यों में हिंदू और मुसलमानों को अपने धर्म-काज करने की पूरी आजादी होगी। न दख्खन में गोवध होगा न महाराष्ट्र में खुदापरस्ती पर रोक-टोक। और दूसरी घोषणा यह कि हिंदू और मुसलमान दोनों परामात्मा की एक बराबर संतान है। इसलिए न हिंदू मंदिरों पर आघात होगा न मुसलमान मजारों, पीरों और पैगंबरों का अपमान किया जाएगा। दोनों एक-दूसरे के साथ मेल-मिलाप से रहेंगे - एक माँ की गोदी में दो भाई।"[35] यहाँ नरसिंह हिंदू-मुस्लिम एकता चाहता है। राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने का प्रयास उसी के द्वारा किया जाता है।

नरसिंह युद्ध के मैदान से भाऊ के पास आकर पुल तोड़ने का अपना काम तमाम होने की बात कहता है। लेकिन साथ में यह बात भी उसे चैन से नहीं बैठने देती कि भाऊ का भतिजा विठ्ठल किसकी गोली का शिकार हुआ। इस बात पर वह भाऊ के साथ चर्चा करता है। तभी तक अनुचर भाऊ को बुलाकर ले जाता है। नरसिंह अकेला विचारमग्न स्वगत लाप करता है उसी समय चार सैनिक आकर उसे बंदी बनाकर ले जाते हैं।

सरदार जिन्सेवाले और नरसिंह की बातचीत ग्वालियर किले के अंधकारपूर्ण तहखाने में होती है। सरदार, नरसिंह की मौत की सजा कम करके उसे आजीवन कारावास की सजा दी गई है यह बता रहा है। साथ में नरसिंह पर दुश्मन के साथ मिलने का आरोप लगाया है। यह सब सुनकर नरसिंह विव्हल हो उठता है। जिन्सेवाले से वह कहता है - "सरदार जिन्सेवाले यह सरासर झूठ है। ... मुझे नहीं मालूम की गोलियों की बौछार क्यों और कहाँ से आई, लेकिन मेरे इशारे से ? उफ.... यह झूठ है। यह मिथ्यारोप है।"[36] इस प्रकार अपने ऊपर किए गए आरोप झूठ हैं तथा आप उस पर यकीन कर सकते हैं ऐसा सवाल नरसिंह जिन्सेवाले से करता है। तभी महाराज की बात नरसिंह को आधा-मुसलमान कहने

की उसे मालूम हो जाती है। हिंदू-मुस्लिम दोनों जातियों के बारे में की गई घोषणाओं का अमल हुआ है, यह सुनकर नरसिंह खुश होता है। समय काटने के लिए वह गढ़पति से एक छोटा सा करघा मँगवाने की बात करता है। उसके द्वारा वह शारदीया को पंचतोलिया साड़ी बुनना चाहता है। यहाँ नरसिंह का शारदीया के प्रति उत्कट प्रेमभाव प्रकट हुआ है।

नरसिंह को गढ़पति द्वारा यह मालूम होता है कि आज शरद् पूर्णिमा है। वह अपने बुने हुए कपड़े को शरद् चाँदनी में देखता है तो उसे बीती यादें सताने लगती हैं। वह स्वगत बोलने लगता है। आज चाँदनी आई है, बायजा तुम्हें भी आना होगा तुम्हें मालूम नहीं की राष्ट्रद्रोह के अपराध में मुझे बंदी बनाया है या मैं खर्दा के युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। इतने में गढ़पति आकर नरसिंह को बताता है महारानी आ रही है तुम उसे वह साड़ी भेंट दो शायद वह तुम्हारी रिहाई करेगी उस वक्त नरसिंह उसे पुकार कर कहता है - गढ़पति... ओह चले गए। यह कपड़ा.... यह तुम्हारी स्मृतियों का ताना-बाना। यह महारानी को दूँ ?.... असंभव ! ....ओह शारदाए। ये लोग कितने नासमझ हैं.... कितने नादान ये पत्थर समझदार हैं ज्यों तुम्हें मेरे पास आने देते हैं। जो रात में मुंढ़ते कमल की पखुंड़िया बन जाते हैं। लेकिन दुनियावालों का कोलाहल। चलो तुम मुझे यहाँ से ले चलो अपने चाँदी से जगमगाते अंबर में। राजाओं और महारानी की चमक-दमक से परे, युद्ध और हलचल से दूर बहुत दूर, जहाँ तारे गाते हैं, जहाँ नीले आसमान की झनकार ज्योति की लय पर झूमती है, जहाँ - ''ऐं तुम कहाँ जा रही हो शारदीये ! शारदीये। शारदीये।''[37]

इस तरह नरसिंह शारदीया की याद में सिसकने लगता है। उसी समय जिन्सेवाले कहता है कि नरसिंहराव तुम्हारी शारदीया तुम्हारे सामने खड़ी है। बायजाबाई उसे बताती है कि उसके पिता ने ही अपनी महत्त्वाकांक्षा के लिए उसे किस प्रकार बली दिया। तथा गोलियों की बौछार भी उसने ही ..ा थी। साथ में वह कहती है कि सिंधिया महाराज ने मुझे इजाजत दी है कि तुम्हें रिहा करूँ। तब नरसिंह उसे कहता है - ''रिहाई। महारानी, किस जीवन के लिए रिहाई, किस नियामत के लिए रिहाई ?''[38] नरसिंह महारानी को यह बताता है कि तुम मुझे छुड़ाने आई तो तुम्हें मेरी भी एक भेंट स्वीकार करनी होगी, ऐसा कहकर वह उसे पंचतोलिया साड़ी भेट देता है। उस वक्त बायजाबाई चली जाती है। नरसिंह उसके पीछेसे कहता है - ''मैं यही रहूँगा क्योंकि तुम यहीं हो महारानी नहीं, बायजाबाई

नहीं लेकिन तुम। तुम मेरी शारदीया ! मेरी शारदीया.... तुम जो मेरी हो, हमेशा थी, हमेशा रहोगी।''[39] यहाँ नरसिंह का बायजाबाई के प्रति प्रेम का परमोच्च भाव प्रकट हुआ है।

प्रस्तुत पात्र की चरित्रगत विशेषताएँ देखते वक्त यह दिखाई देता है कि नरसिंह एक सच्चा प्रेमी, वीर योद्धा, हिंदू-मुस्लिम में समानता चाहनेवाला, राष्ट्रीय एकता बनाए रखनेवाला है। एक कुशल कलाकार तथा अपने कर्तव्य के प्रति सजग है। साथ में अपने कर्तव्य के लिए आदि से अंत तक लड़नेवाले कर्मप्रवण सिपाही के रूप में हमारे सामने आता है।

2. *शर्जेराव उर्फ सखाराम घाटगे -*

शर्जेराव उर्फ सखाराम घाटगे नाटक का खलनायक के रूप में प्रस्तुत होता है। वह कागल गाँव का किलेदार और बाद में नाना फड़णवीस का कर्मचारी बन जाता है। बायजाबाई द्वारा जब उसे पता चलता है कि नरसिंह आया था। और बायजाबाई उससे शादी करना चाहती है, यह सुनकर वह क्रोधित होता है। उस वक्त बायजाबाई से वह कहता है - तेरी शादी मेरी इच्छा से होगी। मुझे मेरे अपमान का बदला लेना है। बायजा उसकी माँ के वायदे के बारे में कहती है तब शर्जेराव तेजी से उसे कहता है - ''किसका वायदा ? कैसा वायदा ? मैं नहीं जानता, तेरी माँ ने क्या-क्या वायदा किया था, मैं इतना जानता हूँ कि तुझे मेरी आज्ञा माननी है, माननी होगी। नादान लड़की ! तेरी पिता की महत्त्वाकांक्षा के यज्ञ को पूरा करने के लिए अगर तेरी आहुति की जरूरत हो तो भी मैं नहीं झिझकूंगा।''[40] इस वाक्य से शर्जेराव की महत्त्वाकांक्षा तथा उसकी कुटिल नीति का पता हमें लग जाता है। अपने अरमानों के लिए अपने पुत्री के अरमानों का गला घोटकर उसकी आहुति देना चाहता है।

मराठा सरदारों की सारी बातें शर्जेराव छिपकर सुनता है और नरसिंह के बारे में महाराज सिंधिया के मन में जहर घोल देता है। साथ में यह भी कहता है कि निजाम के साथ नरसिंह की मिली भगत है। सिंधिया महाराज को ये सारी बातें सच लगती हैं। वे शर्जेराव की चाल नहीं समझते। जब महाराज शर्जेराव से दूसरी बात कहना चाहते हैं तब शर्जेराव अपने ब्राह्मण होने का नाटक करता है। सिंधिया महाराज उसे माला-माल करने और नौकरी का वायदा करते हैं।

शर्जेराव सिंधिया महाराज को यह बात बता देता है कि नाना फडणविस की तिजौरियों में नौ करोड़ रूपया है। महाराज इस बात को सुनकर आश्चर्य चकित हो जाते हैं। वे शर्जेराव को बताते हैं कि तुम्हें जल्दी ही हमारे दरबार में आना होगा। यहाँ भी शर्जेराव अपनी कूटनीति अपनाता है और

नरसिंह को विश्वासघाती ठहराता है। वह सिंधिया के सामने नरसिंह की हिंदू-मुस्लिम की एकता की बातें, निजाम के दल में होनेवाली नकल की बातें और युद्ध के मोर्चे पर जहाँ परशुराम भाऊ का स्थान नरसिंह ने बताया था, उस पर दुश्मन की गोलाबारी होना आदि बातों द्वारा नरसिंह को विश्वासघाती बनाकर वह उसे समाप्त करना चाहता है। क्योंकि शर्जेराव के रास्ते में वही एकमात्र काँटा उसे नजर आता है। सिंधिया महाराज से वह यह बात अपने पर छोडने के लिए कहता है। महाराज दुविधा में पड़ जाते हैं तब शर्जेराव उन्हें कहता है - ''दुविधा छोडिये, सिंधिया महाराज ! आपको और मुझे साथ-साथ बहुत से काम करने हैं। यह तो मामूली सी कारवाई है। .... यशस्वियों के भविष्य का निमंत्रण रक्त के वर्णों में लिखा होता है।''[41] इस प्रकार शर्जेराव अपनी कूटनीति को अपनाता है। वह एक अनुचर का पहनावा पहनकर अपने साथियों के साथ नरसिंह को बंदी बनाता है।

शर्जेराव की दुष्टता और कुटिलता का आभास मिल जाता है। शर्जेराव अपनी पुत्री पर मीठे शब्दों का जाल फैलाकर उसे विश्वास में लेता है और बाद में उसे यह भी बताता है कि ''बायजाबाई खर्दा की लड़ाई ने हमारे अनेक मंसूबे पूरे किए, पर एक मंसूबा तोड़ भी दिया .... नरसिंहराव खर्दा के युद्ध में मारा गया।''[42] यह बात शर्जेराव बायजा को इतने विश्वास के साथ कहता है फिर भी वह पूछती है कि इतने दिनों तक मुझे बताया क्यों नही। तब नरसिंह के प्रति बायजा के मन में नफरत पैदा करने के लिए वह उसे झूठ बोलता है। वह कहता है की नरसिंह दुश्मन की बाजू में लड़ रहा था, मराठों के विरूद्ध, और दुश्मन की फौज से मरनेवालों का ब्यौरा देर से ही मिलता है। बायजा रोने लगती है तब शर्जेराव उसे समझाता है। इस प्रकार शर्जेराव अपनी धूर्तता और दुष्टता का प्रयोग करके अपनी महत्त्वाकांक्षा को फलते-फूलते देखता है।

शर्जेराव खर्दा युद्ध के बाद नाना फडणवीस की नौकरी छोड़कर सिंधिया का कर्मचारी बना। उसने दौलतराव सिंधिया को दुर्व्यसनों के ऱ्हासोन्मुखी पथ पर अग्रसर करके अपना मतलब साधा।

शर्जेराव सिंधिया को शराब पीने की आदत इतनी लगवा देता है कि सिंधिया को शराब के बीना चैन नहीं मिलता। शर्जेराव उसे विभिन्न प्रकार की देशी-विदेशी शराब पिलाता है। नशे में ही उसके साथ बातचीत करके अपने कुटिल दाँव रचाता है। वह अपने लिए प्रधानमंत्री के पद की माँग करता है और उसके बदले में अपनी बेटी की शादी सिंधिया के साथ तय करता है। अपनी महत्त्वाकांक्षा के लिए

अपनी बेटी बायजाबाई को इस तरह बली चढ़ाता है। नशे में ही महाराज की ओर से प्रधानमंत्री बनाने के आज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करवाता है।

स्वयं नाटककार जगदीशचंद्र माथुर ने शर्जेराव के बारे में लिखा है - ''कैसा भयानक चरित्र था शर्जेराव घाटगे का, कैसे दहला देनेवाले कारनामें थे उसके। इटली के सीजर बोर्जिया की तरह हृदयहीन शेक्सपियर के इयागो की तरह चालबाज और निर्मम नादिरशाह की भाँति रक्तपात और नृशंसता का प्रेमी। यह शर्जेराव घाटगे आसुरी वृत्तियों का अवतार स्वरूप था।''[43]

शर्जेराव घाटगे के उपर्युक्त चरित्र-चित्रण को देखकर हम यह महसूस करते हैं कि शर्जेराव का चरित्र कुटिलता और दांव-पेचों से भरा हुआ है। उसमें झूठ, फरेब और आसुरी वृत्ति लबालब भरी हुई है। अपनी महत्त्वाकांक्षा के लिए स्वयं की पुत्री को बली चढ़ाने में वह जरा भी हिचकिचाता नहीं है। इस तरह शर्जेराव एक क्रुर और महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति के रूप में हमारे सामने आता है।

3. दौलतराव सिंधिया -

दौलतराव सिंधिया ग्वालियर राज्य का नरेश एवं मराठा साम्राज्य के अग्रगण्य नेताओं में एक था। वह महादजी सिंधिया का दत्तक पुत्र था। दौलतराव पंद्रह वर्ष की आयु में ही विशाल राज्य का अधिकारी बना था। सभी मराठा सरदार युद्ध के बारे में आपस में चर्चा कर रहे हैं। नरसिंह द्वारा उन्हें यह पता चलता है कि निजाम की छावनी में मराठा सरदारों की नकल की जानेवाली है। तब सिंधिया महाराज की आज्ञा से युद्ध की व्यूह रचना अपनाई जाती है। साथ में नरसिंह की, उसकी कला की प्रशंसा की जाती है। यहाँ सिंधिया महाराज कला प्रेमी तथा कर्तव्य के प्रति सजग रहनेवाले दिखाई देते हैं। परशुराम भाऊ से वे कहते हैं - ''इस वक्त मुझे दूसरा काम है, लेकिन मैं तो आप लोगों के परामर्श में शामिल हूँ। कह दीजिए मेरी सारी फौज कल आक्रमण करने के लिए प्रस्तुत है। .....चाहे तो सवेरे तोपों के साथ मैं भी चलूँ मोर्चे पर ?''[44] यहाँ सिंधियाँ एक आदर्श राजा के रूप में प्रस्तुत हुआ है।

दौलतराव सिंधिया पूना के शरदोत्सव में बायजाबाई को देखते हैं। जो उनके लिए एक अनिंद्य सुंदरी है। उसे देखते ही उससे प्यार करने लगता है। शर्जेराव को यह बात मालूम होती है और अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए शर्जेराव कूटनीति अपनाता है। शर्जेराव, सिंधिया के मन में नरसिंह

के बारे में जो स्थान बना है उसकी जगह जहर घोलने का काम करता है। सिंधिया उस बायजाबाई के बदले में शर्जेराव की हर शर्त मंजूर करते हैं। यहाँ सिंधिया एक आसक्त प्रेमी के रूप में चित्रित किया है।

दौलतराव सिंधिया युद्ध के मैदान से अपने दो विमाताओं (यमुनाबाई, लक्ष्मीबाई) को खत भेजता है। उसमें खर्चे के बारे में भी बताता है। इसी समय शर्जेराव उनके मन में इन माताओं के प्रति नफरत और बायजाबाई के प्रति प्यार उत्पन्न करता है। साथ में अपनी नौकरी के बारे में भी अर्जी पेश करता है। विठ्ठल के मरने की खबर मिलते ही महाराज विह्वल हो उठते हैं।

शर्जेराव घाटगे सिंधिया को शराब पीने की अफीम तथा नृत्य देखने की बुरी आदतें लगवाता है। सिंधिया महाराज अपना सारा समय नृत्य देखने में और शराब पीने में बिताते हैं। शर्जेराव इस तरह सिंधिया का विश्वास पात्र बन जाता है। दौलतराव सिंधिया शर्जेराव के पुत्री पर मुग्ध तो था ही लेकिन इस विवाह द्वारा वह अपना कुल भी कुछ ऊँचा उठाने की कोशिश कर रहा था। इस प्रकार सिंधिया महाराज का ब्याह बायजाबाई के साथ हो जाता है। लेकिन बदले में सिंधिया शर्जेराव को अपना प्रधान मंत्री बनाते हैं।

दौलतराव सिंधिया प्रजावत्सल, कलाप्रेमी कर्तव्य के प्रति सजग रहनेवाले दिखाई देते हैं। लेकिन जैसे ही शर्जेराव की पुत्री बायजा को देखते हैं, तबसे उसे पाने की चाहत उनके मन में उत्पन्न हो जाती है। इसी कारण वे शर्जेराव के इशारे पर नाचने लगते हैं। वे सुंदरी और शराब में पूरी तरह डूब जाते हैं। सिंधिया महाराज को ये बुरी आदतें न होती तो सिंधिया यह पात्र इस नाटक में सहनायक के रूप में तथा एक आदर्श राजा के रूप में प्रस्तुत होता।

4. *परशुराम भाऊ -*

परशुराम भाऊ खर्दा युद्ध में मराठा दल का सेनापति था। मराठों के शिबिर में अपने प्रमुख सैनिकों के साथ वे चर्चा कर रहे हैं। उसी समय वे बाबा फड़के को डाँटते हैं। वे अपनी पराजय को सहन नहीं कर सकते। नरसिंह द्वारा निजाम शिबिर में मराठा सरदारों की नकल करने की बात उन्हें मालुम होती है, तब वे उसी रात उन पर हमला करने की बात करते हैं। लेकिन साथ में वे मौके की तलाश के बारे में सोचते हैं। जब फडके उन से तुरही बजाने की आज्ञा माँगते हैं, तब भाऊ उसे कहते हैं - ''बाबा फडके ! .... तुरही बजेगी अवश्य लेकिन अवसर की आड़ चाहिए। अवसर की आड़।''[45] यहाँ भाऊ की दूरदृष्टि दिखाई देती है। सिंधिया महाराज जब उन्हें तोपचियों को हुक्म देने के बारे में कहते हैं। तब

भाऊ उन्हें बारूद की कीमत युद्ध के मैदान में किस प्रकार सोने जैसी होती है यह समझाता है। अकारण वह अपने गोला-बारूद तथा सैनिकों की शक्ति नष्ट करना नहीं चाहते।

नरसिंहराव द्वारा जब निजाम पर हमला करने के लिए सुनहरा मौका बताया जाता है तब भाऊ स्वयं तोपों के साथ जाने के लिए तैयार हो जाते हैं। जिस पुल के ऊपर से रसद की गाड़ीयाँ आ-जा रही हैं, उसी पुल को काटने की वे नरसिंह को आज्ञा देते हैं। इस प्रकार निजाम पर हमला करने की सभी तैयारी भाऊ करते हैं। यहाँ भाऊ की सैन्य संगठन शक्ति तथा युद्ध नीति हमारे सामने आती है। वे अपने भतीजे विठ्ठल के साथ मोर्चे पर स्वयं चले जाते हैं।

परशुराम भाऊ जिन्सेवाले के साथ युद्ध के मैदान से लौटे हैं। उनके माथे पर पट्टी बांधी है। अपना भतीजा युद्ध में मारा गया इस बात का उन्हें दुःख है, लेकिन निजाम के बारे में उनके मन में क्रोध उत्पन्न हुआ है। वे इस समय नरसिंह के इंतजार में हैं। नरसिंह उन्हें पुल तोड़ने का काम पूरा किया ऐसा जब बताता है तब वे बहुत खुश हो जाते हैं। जब नरसिंह उन्हें वायदे के बारे में कहता है तब भाऊ कहते हैं - ''हमारा युद्ध मुसलमान प्रजा के खिलाफ नहीं है। निजाम और उसके वजीर के दुराग्रह को दूर करने के लिए।''[46] यहाँ भाऊ के मानवतावादी विचार स्पष्ट होते हैं। वे किसी धर्म, पंथ तथा समाज के खिलाफ अपना युद्ध नहीं मानते बल्कि इन्सानियत के दुश्मनों के खिलाफ मानते हैं।

इस प्रकार परशुराम भाऊ एक आदर्श मराठा सेनापति के रूप में हमारे सामने आते हैं। युद्धनीति तथा रणकौशल के बारे में वे कुशल है। सेनापति होकर वे सिर्फ हुक्म नहीं चलाते बल्कि स्वयं लड़ते भी हैं। समयसूचकता और मानवतावादी विचार उनके चरित्र के विशेष पहेलू हैं। उनमें सैनिकों को प्रेरित करने की एक कला है। अपनी बारूद का रक्षण तथा युद्ध कौशल की बातें उसमें हमें दिखाई देती हैं।

5. *बाबा फडके* -

बाबा फडके मराठा दल की रसद सामग्री का प्रधान है। जिसे हम क्वार्टर मास्टर जनरल कहते हैं। मराठों के शिबिर में मराठा सरदारों में बातचीत हो रही है, उसमें बाबा फडके भी शामिल हैं।

बाबा फडके स्वयं सैनिकों की एक टुकड़ी लेकर दुश्मन पर हमला करता है। परशुराम भाऊ और सिंधिया महाराज उसे सवाल पूछते हैं तब बाबा फडके कहता है - ''सैनिकों का साहस अपने

नायकों को निकट पाकर ही बढ़ता है, सिंधिया महाराज।''[47] यहाँ बाबा फडके एक वीर योद्धा तथा अपनी सैनिक टुकड़ी के प्रधान की तरह अपना कर्तव्य निभाता है।

जब नरसिंह ह्मले के बारे में तथा जश्न के बारे में कहता है तब बाबा फडके उतावले हो उठते हैं। वे राजदूत गोंविदराव काले के बारे में भी कुछ भला-बुरा कहते हैं। और भाऊसाहब को तुरही बजाने की आज्ञा माँगते हैं। ह्मले की रणनीति भाऊतैयार करते हैं। तब भाऊ उसमें हिस्सा लेते हैं। वे नरसिंह को बताते हैं कि - ''गोविंदरावजी से कह दो, गोलाबारी के नक्कारखाने में अब वह मेल-मिलाप की तूती बजाने की कोशिश न करें।''[48] इस तरह बाबा फडके निजाम पर ह्मला करने के लिए अपनी रसद सामग्री और सैनिकों के साथ चले जाते हैं।

बाबा फडके यहाँ एक वीर योद्धा के रूप में ह्मारे सामने आता है। जिसके मन में निजाम के खिलाफ नफरत कूट-कूट कर भरी हुई है। मेल-मिलाप उन्हें मंजूर नहीं है। पूरे नाटक में फडके का अपना अलग प्रकार का अस्तित्व नहीं है।

6. *जिन्सेवाले -*

जिन्सेवाले ग्वालियर का एक कुलिन सरदार है। वह नरसिंहराव का गहरा मित्र भी है। मराठा सरदारों में युद्ध के बारे में चर्चा हो रही है। उसमें जिन्सेवाले सभी के सामने अपने भेदिया तथा नरसिंह के बारे में बताता है। नरसिंह को बुलाकर उसे निजाम अली के बारे में बताने को कहता है। निजाम पर ह्मला करने की तैयारी हो रही है, सभी सैनिक अपने-अपने काम में लग जाते हैं। तब जिन्सेवाले नरसिंह को पहुँचाने के लिए नदी-तट तक चले जाते हैं। यहाँ जिन्सेवाले का अपने दोस्त नरसिंह के प्रति मित्र-प्रेम दिखाई देता है।

जिन्सेवाले ग्वालियर किले के नीचे एक अंधकारपूर्ण तहखाने में अपने मित्र नरसिंह के साथ बातचीत करता हुआ दिखाई देता है। राजद्रोह के अपराध में नरसिंह को, शर्जेराव को फाँसी की सजा का हुक्म दिया था। जिन्सेवाले उसे कहता है कि महाराज ने यह हुक्म रद्द करके आजीवन कारागार की सजा दी है। अपने मित्र के प्रति जिन्सेवाले के मन में प्यार है। उसे मालूम है कि शर्जेराव के षड्यंत्र का शिकार नरसिंह को होना पड़ा। फिर भी नरसिंह से जिन्सेवाले यह बात पूछते हैं कि क्या तुम्हारी निजाम के साथ मिली-भगत थी। सिंधिया महाराज तुम्हें आधा मुसलमान कहते हैं। नरसिंह इस बात पर विह्वल हो उठता है। वह कहता है - मैंने बहादुरी दिखाकर पुल तोड़ा इसका यह पुरस्कार इसका

जवाब दीजिए। तब जिन्सेवाले कहते हैं - ''क्या जवाब दूँ नरसिंह ... न जाने किसने सिंधिया महाराज के कान भरे हैं। ज्यो मेरी लाख मिन्नते करने पर भी वह पिघलते नहीं, समझते नहीं। ....बहुत-बहुत बिनती करने पर वह सिर्फ इस बात के लिए राजी हुए कि तुम्हें फाँसी न दी जाए। लेकिन ....लेकिन... नरसिंह इस ग्वालियर के किले के तहखाने में आजीवन कारागार का हुक्म दिया है।''[49] यहाँ जिन्सेवाले का मित्रप्रेम उमड़ आता है। उन्हें मालूम है कि नरसिंह निर्दोष है लेकिन सिंधिया उसकी बात मानते नहीं। फिर भी वे कहते हैं मैं सिंधिया के पास फिर जाऊँगा तुम्हारे लिए।

जिन्सेवाले ग्वालियर से जब पूना में सिंधिया महाराज के दरबार में आते हैं। महाराज के महल में नर्तकी और शराब देखकर वे अचरज में पड़ जाते हैं। ग्वालियर आने का वह महाराज को निमंत्रण देते हैं। तब महाराज अपनी शादी की बात उसे कहते हैं। इसी खुशी के मौके पर पुनश्च: जिन्सेवाले महाराज को दोनों मिलकर आने का निमंत्रण देते हैं। साथ में नरसिंह को छोड़ने की बात भी वे कहते हैं। तब सिंधिया महाराज इस बात का फैसला महारानी पर छोड़ देते हैं। इस वक्त जिन्सेवाले दरबार से निराश होकर लौटते हैं।

जिन्सेवाले महारानी के साथ नरसिंह के पास आते हैं। महारानी के आने का समाचार वे नरसिंह को देते हैं। महारानी बायजाबाई सिंधिया है ऐसा भी वे बताते हैं और बाहर चले जाते हैं। जिन्सेवाले को अपने दोस्त की कमजोरी मालूम थी। अंत में वे इस प्रकार नरसिंह की बायजाबाई के साथ भेंट कराके अपनी दोस्ती निभाता है।

इस प्रकार पूरे नाटक में जिन्सेवाले मराठा सेनापति के साथ-साथ एक सच्चा दोस्त भी दिखाई देता है। उसका हर पल अपना मित्र नरसिंह को बचाने की कोशिश में ही चला जाता है। अपने मित्र को वह बेकसूर मानकर उस पर लगाया गया राष्ट्रद्रोह का धब्बा निकालने की वह हर समय चेष्टा करता है। अंत में नरसिंह की भेंट महारानी के साथ इस आशा से कराता है कि कारागार से महारानी द्वारा उसे मुक्ति मिले।

जिन्सेवाले एक वीर योद्धा तथा ग्वालियर का कुलिन सरदार होने के नाते हर छ: महिने के बाद पूना में आकर सिंधिया को अपने ग्वालियर राज्य के बारे में समाचार देता है। अपने कर्तव्य के प्रति वह हर समय सजग रहता है। इस पात्र की अपनी अलग ऐसी कोई कहानी नहीं है। नाट्य वस्तु का ऐतिहासिक ताना-बाना बुनने के लिए नाटककार ने उसका उपयोग किया है।

7. *बायजाबाई -*

शारदीया नाटक के स्त्री पात्रों में बायजाबाई प्रमुख स्त्री पात्र है। वह प्रस्तुत नाटक की नायिका है। बायजाबाई शर्जेराव घाटगे की पुत्री तथा नरसिंहराव की प्रेयसी के रूप में चित्रित की है। नरसिंहराव और बायजाबाई के संवादों द्वारा उनका प्यार स्पष्ट होता है। नरसिंह बायजा को यह याद दिलाता है कि बायजाबाई की माँ को दिया हुआ वचन उसने किस प्रकार निभाया है। वह युद्ध के मैदान में जाने के लिए बायजाबाई से विदाई ले रहा है तब बायजा पीड़ित हो उठती है। वह कहती है - ''सौदागर फिर अपने काफिले को लौट चला।''[50] नरसिंह के युद्ध क्षेत्र में जाने से पहले उससे एक बार मिलने की बात बायजा करती है। नरसिंह उसे कहता है - हमारे विदा वियोग के लंबे पथ पर शरद् पूर्णिमा चांदी बिखेर देती है। तब बायजा कहती है - ''मेरे लिए तो अंगारे ही रहते हैं नरसिंह। कागल में शरद् की वे चाँदनी रातें ....कब हमें वापस मिलेगी नरसिंह ?''[51] इस तरह बायजा बिदाई समय पर अत्यंत विह्वल हो उठती है। उसका एकनिष्ठ प्रेम उमड़ आता है। अंत में एक वीर क्षत्रानी की तरह बायजा अपनी उंगली से रक्त निकालकर रक्त का टीका नरसिंह को लगाकर विदा करती है। यहाँ बायजाबाई का वीर क्षत्रानी का रूप सामने आता है।

नरसिंह के प्रति बायजाबाई का प्रेम उत्कट बन पड़ा है। अपने प्यार के बारे में अपने पिता को बताने के लिए जब सरनाबाई तैयार नहीं होती तब वह स्वयं अपने मन की बात शर्जेराव से कहती है। बायजाबाई का नरसिंह के प्रति प्यार देखकर शर्जेराव क्रोधित होते हैं। वह अपनी महत्त्वाकांक्षा के लिए अपनी बेटी के जीवन की आहुति देना चाहते हैं। बायजाबाई को यह बात मंजूर नहीं है। वह शर्जेराव से कहती है - ''मुझे मरण का आदेश दो बाबा, लेकिन नरसिंह को।''[52] यहाँ बायजा अपने प्राणों की आहुति देने के लिए तैयार होती है। यहाँ बायजा का एक प्रेयसी का सुंदर रूप बन पड़ा है। जो अपने प्यार को पाने के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार होती है। अपने प्राणों से भी अधिक वह अपने प्रेम को चाहती है।

शर्जेराव ने अपनी पुत्री के मन बहलाव के लिए तथा उस पर निगाह रखने के लिए रहीमन नाम की एक नर्तकी रखी है। लेकिन बायजाबाई का मन उस गीत-संगीत में नहीं रमता। उसकी आँखों के सामने हर समय नरसिंह की छबी ही आती है। वह हर समय उसी को पाने के लिए छट-पटा रही है। गोकुल की गोपियों की तरह मथुरा में ही विरह की आग में जलना उसे पसंद नहीं है। वह बार-बार

सरनाबाई से सवाल पूछती है, गोकुल की गोपियाँ कान्हा को ढूँढ़ने के लिए क्यों नहीं गई ? रोती क्यों रही दिन-रात ? बायजा कहती है - ''सरनाबाई मैं वह नहीं करना चाहती जो गोकुल की गोपियों ने किया। आँसुओं में मैं नहीं डूबूंगी। .... मैं जाऊँगी उनके पास।''[53] इस तरह बायजा सरनाबाई के साथ घर छोड़कर नरसिंह के पास जाने के लिए तैयार होती है। लेकिन उसी समय रहीमन शर्जेराव को लेकर आती है। बायजा खुशी से अपने मधुर मिलन का सपना देखकर खुशी से झूम उठी है। लेकिन शर्जेराव को सामने देखकर वह जहर की माँग करती है। शर्जेराव बायजा के साथ छल-कपट करता है। उसे झूठ बोलता है। नरसिंह मारे जाने की खबर उतने ही विश्वास के साथ वह बायजा से कहता है। बायजा रोने लगती है। अपने प्रेमी की मृत्यु का समाचार वह सह नहीं सकती।

बायजाबाई हमारे सामने महारानी बनकर आती है। शर्जेराव घाटगे ने अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए सिंधिया के साथ बायजा की शादी करके दीवान का पद हासिल किया है। सिंधिया महाराज से बायजाबाई को पता चलता है कि नरसिंह ग्वालियर में बंदी बनाया गया है। अपने पिता की सारी साजिशों का पता उसे लगता है। वह नरसिंह से मिलने के लिए शरद पूर्णिमा के दिन जाती है। दोनों की मुलाकात होती है। अपने पिता ने स्वार्थ के लिए जो कुछ किया उन सारी बातों को नरसिंह के सामने वह खोल देती है। अपने प्रेमी के निकट होकर भी वह अपने उस मधुर मिलन के सपने को पूरा नहीं कर सकती। इस मौके पर नरसिंह बायजाबाई को पंचतोलिया साड़ी भेंट कराता है। अपने भूतपूर्व प्रेमी ने अपनी उंगली में सूराख करके अपने लिए साड़ी बुनी और आज उसे वह भेंट कर रहा है। यह देखकर बायजा की आँखों से आँसू बहने लगते हैं। नरसिंह बायजाबाई को बताता है - ''तुम रो रही हो बायजाबाई। रोती क्यों हो ? तुम्हारे टीके ने मुझे बचाया। .... और .... यह ...साड़ी...यह मेरा रक्तदान यह अंचल....यह... तुम्हारे नए जीवन में तुम्हारी रक्षा करें।''[54] बायजाबाई का दिल पीड़ा से भर उठता है। वह उसे फिर से रिहाई की बात कहती है। उसे आज्ञापत्र के बारे में भी कहती है। लेकिन नरसिंह तहखाने से बाहर नहीं आता। यहाँ दोनों की एक दूसरे के प्रति त्याग की भावना हमें दिखाई देती है। उन दोनों का एक दूसरे के प्रति ज्यो प्यार है वह वासनामय नहीं बल्कि भावनात्मक है।

उपर्युक्त विवेचन के बाद बायजाबाई की कुछ विशेषताएँ हमारे सामने आती हैं। पूरे नाटक में बायजाबाई नरसिंह की प्रेमिका के रूप में चित्रित की है। अपने प्यार को पाने की छटपटाहट उसमें दिखाई देती है। प्यार के लिए अपने प्राणों की आहुति देने के लिए वह तैयार है। गोपियों की तरह

विरह की आग में जलना उसे पसंद नहीं। वह एक आदर्श प्रेमिका के रूप में हमारे सामने आती है। लेकिन जब सिंधिया के साथ उसकी शादी हो जाती है तब अपनी मर्यादाओं को वह कभी भी नहीं छोड़ती।

8. *सरनाबाई* -

सरनाबाई बायजाबाई की परिचारिका है। वह हर समय बायजाबाई के साथ रहती है। जब बायजा अपने रक्त का टीका लगाकर नरसिंह को विदा करती है, तब सरनाबाई तुरंत उस घाव पर पट्टी बाँधती है। बायजाबाई का नरसिंह के साथ प्यार उसे मंजूर है, लेकिन शर्जेराव के सामने वह मजबूर है। शर्जेराव की कूटनीति उसे मालूम होती है, तब बायजाबाई से वह कहती है - "तुम्हारे बापू ने कोई और डगर पकड़ ली है, और न पीछे निगाह डालते हैं, न नीचे। प्यार के फूलों में ठोकर लगेगी ही।"[55] इस प्रकार शर्जेराव के प्रति अपनी नफरत वह प्रकट करती है।

सरनाबाई से बायजाबाई का विरह की आग में जलना देखा नहीं जाता वह उससे विदा लेना चाहती है। लेकिन बायजाबाई उसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं होती। अपने जाने का कारण वह बताती है - "मैंने बहुत दिन निबाहा। जब तक जीवित रहूँगी अपनी बाईसाहब की स्मृति का संबल धारे रहूँगी, पर इस घर की दीवारें, मानों मुझ पर संदेह की दृष्टि डाल रही हैं। फटकार और मारपीट सह लूँ, पर यह संदेह, यह शक। मेरा मन थक गया है, बाईसाहब।"[56]

बायजाबाई बार-बार गोकुल की गोपियों का सवाल पूछती है और कहती है कि मैं उन गोपियों की तरह तिल-तिल कर विरह की आग में जलनेवाली नहीं हूँ। वह अपनी इच्छा भागकर पूरी करना चाहती है। तब सरनाबाई उसका साथ देती है। दोनों मिलकर भागना चाहते हैं, लेकिन यह खबर रहीमन सर्जेराव को देती है और उनकी योजना सफल नहीं होती।

सरनाबाई को नाटककार ने एक सहायक पात्र के रूप में चित्रित किया है।

9. *रहीमन* -

रहीमन गायिका और नर्तकी है। शर्जेराव घाटगे ने उसे अपनी पुत्री की संगित शिक्षा एवं सिंधिया के मनोरंजन के लिए नियुक्त किया है।

जब बायजाबाई और सरनाबाई भागने का प्रयास कर रही थी, तब रहीमन यह खबर शर्जेराव को देती है और उनकी योजना नष्ट करती है। शर्जेराव घाटगे ने उसे नियुक्त करने के कारण वह

हर समय उसी के पक्ष में रहती है। रहीमन महाराजा सिंधिया के सामने नाचकर उन्हें खुश करती है।

प्रस्तुत पात्र को नाटककार ने अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए प्रस्तुत किया है। एक पात्र के रूप में वह हमारे सामने आती है और चली जाती है।

अन्यपात्र -

i. दरबान -

दरबान सिंधिया का कर्मचारी है।

ii. पत्रलेखक -

पत्रलेखक सिंधिया महाराज का एक कर्मचारी है। सिंधिया महाराज जो बातें पत्र में लिखने के लिए कहते हैं वही लिखता है।

iii. सैनिक -

सैनिक शर्जेराव के अनुचर है। शर्जेराव के कहने पर वे नरसिंहराव को पकड़कर ग्वालियर किले के तहखाने में पहुँचाते हैं।

iv. गढ़पति -

गढ़पति ग्वालियर किले और कारागार का अधिपति है। वह सिंधिया का कर्मचारी भी है। किले में महारानी आने की खबर वह नरसिंहराव को देता है। नरसिंहराव की रिहाई की कामना भी वह करता है। महारानी को प्रसन्न करने के लिए पंचतोलिया साड़ी नरसिंहराव को महारानी के लिए उपहार में देने की बात कहता है।

निष्कर्ष -

उपर्युक्त विवेचन के बाद यह स्पष्ट होता है कि शारदीया नाटक में कुल मिलाकर तेरह पात्र हैं। तीन स्त्री पात्र और बाकी पुरूष पात्र हैं। पुरूष पात्रों में नरसिंहराव नायक, शर्जेराव घाटगे खलनायक तथा दौलतराव सिंधिया सहनायक के रूप में हैं। बाकी पुरूषपात्रों में परशुराम भाऊ, बाबा फडके और जिन्सेवाले का थोड़ा बहुत चरित्रांकन हुआ है। बाकी चार पुरूषपात्र गौण पात्र हैं। स्त्री पात्रों

में नायिका बायजाबाई महत्त्वपूर्ण पात्र है। पूरे नाटक में इस पात्र का चरित्रांकन हुआ है। बाकी दो सरनाबाई और रहीमन गौण स्त्री पात्र हैं।

इस तरह प्रस्तुत नाटक के सभी पात्र ऐतिहासिक नाट्य स्थितियाँ तैयार करने में आवश्यक और महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संदर्भ सूची

1. धनिक धनंजय, दशरूपकम्, श्लोक 1, 2

2. भरतमुनि-नाट्यशास्त्र, अध्याय - 24

3. धनिक धनंजय, दशरूपकम, श्लोक 1, 2

4. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अध्याय - 24

5. जगदीशचंद्र माथुर, कोणार्क, पृ. 26

6. वही, पृ. 42

7. वही, पृ. 35

8. वही, पृ. 33

9. वही, पृ. 34

10. वही, पृ. 51

11. वही, पृ. 58

12. वही, पृ. 47

13. वही, पृ. 39

14. वही, पृ. 39

15. वही, पृ. 79

16. वही, पृ. 26

17. वही, पृ. 50

18. जगदीशचंद्र माथुर, पहला राजा, पृ. 44

19. वही, पृ. 45

20. वही, पृ. 68

21. वही, पृ. 70

22. वही, पृ. 81

23. वही, पृ. 30

24. जगदीशचंद्र माथुर, पहला राजा, पृ. 31
25. वही, पृ. 49
26. वही, पृ. 30
27. वही, पृ. 65
28. वही, पृ. 57
29. वही, पृ. 91
30. वही, पृ. 37
31. वही, पृ. 59
32. जगदीशचंद्र, शारदीया, पृ. 23
33. वही, पृ. 28
34. वही, पृ. 43
35. वही, पृ. 45
36. वही, पृ. 82
37. वही, पृ. 107-108
38. वही, पृ. 112
39. वही, पृ. 114
40. वही, पृ. 33
41. वही, पृ. 57
42. वही, पृ. 75
43. वही, पृ. 16
44. वही, पृ. 46
45. वही, पृ. 40
46. वही, पृ. 61
47. वही, पृ. 35
48. वही, पृ. 43

49. जगदीशचंद्र, शारदीया, पृ. 84

50. वही, पृ. 26

51. वही, पृ. 27

52. वही, पृ. 34

53. वही, पृ. 70

54. वही, पृ. 114

55. वही, पृ. 30

56. वही, पृ. 70